मूल्य : ₹ 50 फरवरी 2026 आई.एस.ओ. 9001: 2015 संगठन

खेती

भाकृअनुप ICAR

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ

• इस अंक में •

सर्दियों में पशुधन का प्रभावी प्रबंधन

एक्वास्केपिंग से आजीविका के नए आयाम

पौष्टिक चारा राइग्रास का सफल उत्पादन

कार्बन खेती है जलवायु स्मार्ट कृषि

प्रोटीन एवं पोषण से भरपूर फिश चॉकलेट

पोषण की कमी आज देश की एक बड़ी सामाजिक स्वास्थ्य चुनौती है, जिसका प्रभाव सबसे अधिक बच्चों, किशोरों और महिलाओं पर दिखाई देता है। संतुलित आहार के अभाव में प्रोटीन, आयरन और अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी शारीरिक क्षमता, रोग प्रतिरोधक शक्ति और मानसिक विकास को प्रभावित करती है। यद्यपि कुपोषण दूर करने के लिए अनेक पूरक आहार उपलब्ध हैं, लेकिन स्वाद और स्वीकार्यता की कमी के कारण वे अपेक्षित प्रभाव नहीं छोड़ पाते। ऐसे परिदृश्य में यदि पोषण को स्वाद के साथ इस तरह प्रस्तुत किया जाए कि वह सभी आयु वर्गों को सहज रूप से स्वीकार्य हो, तो उसका प्रभाव अधिक स्थायी हो सकता है। इसी सोच से श्रीमती गार्गी गितोम बोरा द्वारा विकसित 'फिश चॉकलेट' एक अभिनव और व्यावहारिक पहल है, जो स्वाद के माध्यम से पोषण को बढ़ावा देती है। यह नवाचार न केवल प्रोटीन की कमी को पूरा करने में सहायक है, बल्कि मत्स्य संसाधनों के प्रभावी उपयोग और मूल्यवर्धन की दिशा में भी एक प्रभावी कदम है।

फिश चॉकलेट पोषण और स्वाद का एक अनूठा संगम है, जिसे मत्स्य आधारित फंक्शनल फूड के रूप में विकसित किया गया है। इस नवाचार में पोषक तत्वों से भरपूर छोटी मछलियों का उपयोग किया जाता है, जिनका सामान्यत: कम व्यावसायिक उपयोग हो पाता है। इन मछलियों को अच्छी तरह साफ करने के बाद पकाया या सुखाया जाता है और फिर उनका महीन पेस्ट तैयार किया जाता है। इस पेस्ट को उच्च गुणवत्ता वाली तरल चॉकलेट के साथ संतुलित अनुपात में मिलाया जाता है।

तैयार मिश्रण को विशेष मोल्ड्स में डालकर आकर्षक आकार दिए जाते हैं, जिससे यह उत्पाद बच्चों के लिए भी आकर्षक बन जाता है। अंतिम चरण में चॉकलेट को रंगीन फॉयल पेपर या सुरक्षित पैकेजिंग में बंद किया जाता है। पूरी प्रक्रिया स्वच्छता और खाद्य सुरक्षा मानकों को ध्यान में रखकर की जाती है, जिससे यह उत्पाद लंबे समय तक सुरक्षित और उपयोग योग्य बना रहता है।

विशेष

फिश चॉकलेट की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह मत्स्य प्रोटीन से भरपूर होते हुए भी स्वाद में सामान्य चॉकलेट जैसी प्रतीत होती है। मछली की गंध या स्वाद को इस प्रकार संतुलित किया गया है कि उपभोक्ता, विशेषकर बच्चे, इसे सहज रूप से स्वीकार कर सकें। यह उत्पाद 'शेल्फ-स्टेबल' है, अर्थात सामान्य परिस्थितियों में इसे लंबे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है, जो इसे वितरण और भंडारण के लिए उपयुक्त बनाता है।

आकर्षक पैकेजिंग में फिश चॉकलेट

लाभ

इस नवाचार का सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह पोषण और स्वाद को एक साथ जोड़ता है। इसे स्कूल पोषक कार्यक्रम, आंगनवाड़ी पोषण योजनाओं और विभिन्न पोषण हस्तक्षेप कार्यक्रमों में शामिल किया जा सकता है। बच्चे, जो अक्सर पौष्टिक आहार से परहेज करते हैं, बिना अपनी खाने की आदत बदले आवश्यक प्रोटीन और अन्य पोषक तत्व प्राप्त कर सकते हैं। इससे कुपोषण, प्रोटीन की कमी और एनीमिया जैसी समस्याओं के नियंत्रण में सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त, फिश चॉकलेट में प्रयुक्त छोटी मछलियां कैल्शियम, आयरन और आवश्यक अमीनो अम्ल से भरपूर होती हैं। इनका उपयोग करके न केवल पोषण स्तर सुधरता है, बल्कि उन मत्स्य संसाधनों का भी बेहतर उपयोग होता है, जो अक्सर कम कीमत के कारण उपेक्षित रह जाते हैं।

इसके निर्माण में स्थानीय स्तर पर उपलब्ध कच्चे माल का उपयोग किया जा सकता है, जिससे इसकी लागत कम रहती है और ग्रामीण क्षेत्रों में भी इसका उत्पादन संभव हो पाता है। लगभग 1 कि.ग्रा. फिश चॉकलेट बनाने की लागत मात्र 400 रुपये आती है, जो इसे किफायती पोषण विकल्प बनाती है।

संभावनाएं

फिश चॉकलेट के विस्तार की

पौष्टिक एवं स्वादिष्ट फिश चॉकलेट

संभावनाएं अत्यंत व्यापक हैं। भारत के वे राज्य जहां मत्स्य उत्पादन अधिक होता है, जैसे असोम, पश्चिम बंगाल, केरल, ओडिशा और आंध्र प्रदेश, वहां इस नवाचार को बड़े पैमाने पर दोहराया जा सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि उत्पादन की मानकीकृत प्रक्रिया विकसित की जाए और इच्छुक समूहों को उचित प्रशिक्षण प्रदान किया जाए। पोषण संबंधी दावों को और अधिक मजबूत बनाने के लिए इस उत्पाद का वैज्ञानिक तरीके से पोषण विश्लेषण और पुष्टिकरण किया जाना आवश्यक है।

फिश चॉकलेट कुपोषण जैसी गंभीर समस्या से निपटने का एक अभिनव, स्वादिष्ट और व्यावहारिक समाधान है। यह नवाचार पोषण सुरक्षा, मत्स्य संसाधनों के बेहतर उपयोग और ग्रामीण उद्यमिता को एक साथ जोड़ता है। कम लागत, सरल निर्माण प्रक्रिया और व्यापक उपयोगिता के कारण यह उत्पाद भविष्य में पोषण आधारित नवाचारों की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम सिद्ध हो सकता है। यदि इसे वैज्ञानिक समर्थन, प्रशिक्षण और नीति स्तर पर प्रोत्साहन मिले, तो फिश चॉकलेट भारत में कुपोषण उन्मूलन के प्रयासों में उल्लेखनीय योगदान दे सकती है।

(स्रोत: विकसित कृषि संकल्प अभियान संकलन)

खेती

कृषि विज्ञान द्वारा ग्रामोत्थान की मासिक पत्रिका

वर्ष: 78, अंक: 10, फरवरी 2026

संपादन सलाहकार समिति

1. **डा. राजबीर सिंह** — **अध्यक्ष**
   उप-महानिदेशक (कृषि विस्तार)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
2. **डा. अनुराधा अग्रवाल** — **सदस्य**
   परियोजना निदेशक (कृज्ञाप्रनि)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
3. **डा. विनोद कुमार सिंह** — **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप-क्रीडा, हैदराबाद
4. **डा. धीर सिंह** — **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल
5. **डा. के.के. सिंह** — **सदस्य**
   कुलपति
   सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि विश्वविद्यालय
   मोदीपुरम, मेरठ
6. **श्री हर्षवर्धन** — **सदस्य**
   प्रधान जनसंपर्क अधिकारी, इफको, नई दिल्ली
7. **श्री रितु राज** — **सदस्य**
   कृषि पत्रकार
8. **सुश्री नीलम त्यागी** — **सदस्य**
   प्रगतिशील किसान
9. **सुश्री सुनीता अरोड़ा** — **सदस्य सचिव**
   संपादक, हिन्दी संपादकीय एकक (कृज्ञाप्रनि)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

प्रधान संपादक
डा. अनुराधा अग्रवाल
संपादक
सुनीता अरोड़ा
संपादन सहयोग
गजेन्द्र

प्रभारी (उत्पादन एकक)
पुनीत भसीन

प्रभारी (व्यवसाय एकक)
भूपेन्द्र दत्त
दूरभाष: 011-25843657
E-mail: businessuniticar@gmail.com
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा गेट, नई दिल्ली-12

एक प्रति: रु. 50.00 वार्षिक : रु. 500.00
विशेषांक : रु. 200.00

E-mail : khetidipa@gmail.com

डिस्क्लेमर

लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं। उनसे भाकृअनुप की सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्री का कॉपीराइट अधिकार भाकृअनुप-डीकेएमए के पास सुरक्षित है। इन्हें पुन: प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है। रसायनों-कीटनाशकों की डोज संबंधित संस्तुतियों का प्रयोग विशेषज्ञों से परामर्श के बाद करें। समस्त विवादों के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

विषय-सूची

निदेशक की कलम से — खाद्यान्न प्रसंस्करण से रोजगार और व्यावसायिक संभावनाएं-**अनुराधा अग्रवाल**

4 उद्यमिता

एक्वास्केपिंग से आजीविका के नए आयाम

रोशनी अग्निहोत्री, हेमलता सिंह, शिवेंद्र कुमार **और** ज्योत्स्ना रानी प्रधान

9 देखभाल

सर्दियों में पशुधन का प्रभावी प्रबंधन

जय प्रकाश **और** डी.के. राणा

11 सफलता गाथा

पर्वतीय क्षेत्रों में बीज संरक्षण एवं सामुदायिक बीज बैंक सुदृढ़ीकरण

अनुराधा भारतीय, जोगेन्द्र सिंह बिष्ट, नव प्रभात, जे.पी. अदित्य, पंकज सिंह चौहान, हेमलता जोशी, निर्मल कुमार हेड़ाऊ **और** लक्ष्मी कांत

14 उपयोगिता

फसलोत्पादन एवं मानव पोषण में जिंक की भूमिका

शबनम, राजीव कुमार **और** नेहा चौहान

17 स्वास्थ्य

स्क्रब टाइफस रोग से बचाव

हिमानी शर्मा **और** नवल किशोर सिंह

19 पशु आहार

पौष्टिक चारा राईग्रास का सफल उत्पादन

ब्रजेश कुमार, मगन सिंह, संदीप कुमार **और** राकेश कुमार

विषय-सूची

22 **रोकथाम**

रागी में झुलसा रोग का समेकित प्रबंधन

संजीव कुमार, सी.एस. आजाद, राकेश कुमार, देवेंदर मण्डल **और** बाल कृष्ण

24 **समाधान**

कार्बन खेती जलवायु स्मार्ट कृषि का सशक्त मॉडल

आनन्द प्रसाद राकेश, संतोष कुमार सिंह, आर.के. झा **और** शिवनाथ सुमन

27 **उर्वरता**

जैविक खाद उत्पादन की उन्नत विधि

अरूण शंकर, के.के. मिश्र, धर्मराज सिंह **और** सती शंकर सिंह

29 **हरी खाद**

धान में अजोला की उपयोगिता

आशीष राय, अरविन्द कुमार सिंह, जीर विनायक, अंशु गंगवार **और** निधि कुमारी

32 **कृषि कैलेण्डर**

फरवरी के मुख्य कृषि कार्य

राजीव कुमार सिंह, एस.एस. राठौर, प्रवीण कुमार उपाध्याय, अंजली पटेल **और** आदित्य सिंह

नवाचार

आवरण II

प्रोटीन एवं पोषण से भरपूर फिश चॉकलेट

स्वास्थ्यवर्धक

आवरण III

श्री अन्न व्यंजनों के आगे फीका पड़ता जंक फूड

खाद्यान्न प्रसंस्करण से रोजगार और व्यावसायिक संभावनाएं

भारत में गेहूं, चावल, दालें, मक्का, ज्वार, बाजरा जैसे खाद्यान्न न केवल देश की खाद्य सुरक्षा का आधार हैं, बल्कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ भी हैं। ऐसे में खाद्यान्न प्रसंस्करण का महत्व आज पहले से कहीं बढ़ गया है, क्योंकि यह कृषि और उद्योग के बीच एक सशक्त सेतु का कार्य करता है।

खाद्यान्न प्रसंस्करण का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इससे कच्चे अनाज का मूल्य संवर्धन होता है। जब गेहूं से आटा, सूजी या पास्ता बनता है, चावल से *रेडी-टू-कुक* उत्पाद तैयार होते हैं या दालों की सफाई, ग्रेडिंग और पैकेजिंग की जाती है, तो इनका बाजार मूल्य कई गुना बढ़ जाता है। इससे किसानों को बेहतर दाम मिलने की संभावना बनती है और बिचौलियों पर निर्भरता कम होती है।

दूसरा महत्वपूर्ण पहलू भंडारण और अपव्यय में कमी है। भारत में हर वर्ष बड़ी मात्रा में खाद्यान्न उचित भंडारण और प्रसंस्करण के अभाव में नष्ट हो जाता है। आधुनिक प्रसंस्करण तकनीकें अनाज की शेल्फ लाइफ बढ़ाती हैं, जिससे खाद्य सुरक्षा मजबूत होती है और राष्ट्रीय संसाधनों की बचत द्वारा देश की आर्थिक उन्नति होती है।

रोजगार के अवसरों की दृष्टि से खाद्यान्न प्रसंस्करण एक प्रधान उद्योग है। अनाज की सफाई, छंटाई, ग्रेडिंग, पिसाई, पैकेजिंग, भंडारण, परिवहन और विपणन हर स्तर पर कुशल और अर्द्ध कुशल श्रमिकों की आवश्यकता होती है। इससे ग्रामीण युवाओं, महिलाओं और स्वयं सहायता समूहों को स्थानीय स्तर पर रोजगार मिलता है और शहरों की ओर पलायन में कमी आती है।

व्यवसाय की दृष्टि से खाद्यान्न प्रसंस्करण एक उभरता हुआ क्षेत्र है। बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण, बदलती जीवनशैली और *रेडी-टू-कुक* खाद्य उत्पादों की बढ़ती मांग ने इस उद्योग को नई गति प्रदान की है। लघु स्तर पर आटा चक्की, दाल मिल, राइस मिल या फ्लेक्स और स्नैक्स उत्पादन से लेकर बड़े स्तर पर ब्रांडेड पैकेज्ड फूड तक इस क्षेत्र में निवेश और उद्यमिता की अपार संभावनाएं हैं।

सरकार भी *'मेक इन इंडिया', आत्मनिर्भर भारत, प्रधानमंत्री किसान संपदा योजना* और *फूड प्रासेसिंग पार्क* जैसी योजनाओं के माध्यम से इस क्षेत्र को प्रोत्साहित कर रही है। इससे न केवल निजी निवेश बढ़ा है, बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के नये अवसर भी सृजित हुए हैं।

खाद्यान्न प्रसंस्करण केवल एक उद्योग नहीं, बल्कि किसानों की आय बढ़ाने, रोजगार सृजन, खाद्य सुरक्षा और आर्थिक विकास का सशक्त माध्यम है। यह क्षेत्र भारत की कृषि आधारित अर्थव्यवस्था को मजबूत कर सकता है। हम कच्चे अनाज के निर्यातक बनने की बजाय मूल्यवर्धित और प्रसंस्करित खाद्यान्न उत्पादों के वैश्विक आपूर्तिकर्ता बनाने की दिशा में कदम बढ़ा सकते हैं।

अनुराधा

(अनुराधा अग्रवाल)

एक्वास्केपिंग से आजीविका के नए आयाम

रोशनी अग्निहोत्री[1], हेमलता सिंह[2], शिवेंद्र कुमार[3] और **ज्योत्स्ना रानी प्रधान[2]**

"वर्तमान समय में नव-मध्यम वर्ग के उभार, शहरीकरण की तेजी और सोशल मीडिया के प्रभाव के कारण घर की आंतरिक सज्जा से जुड़े उत्पादों और सजावटी पौधों की मांग लगातार बढ़ रही है। इसी प्रकार रंगीन पत्थरों वाले पारंपरिक एक्वेरियम की जगह अब पानी के भीतर बनाए जाने वाले आकर्षक लघु परिदृश्य (एक्वास्केप) की लोकप्रियता तेजी से बढ़ रही है। सुव्यवस्थित रूप से तैयार प्रत्येक एक्वास्केप में सजावटी पौधों और मछलियों का उपयुक्त संयोजन इसे विशिष्ट बनाता है। तेजी से बदलती जीवनशैली और बढ़ती मांग के साथ इस क्षेत्र में नए रोजगार और व्यावसायिक संभावनाएं विकसित हो रही हैं। उचित प्रशिक्षण प्राप्त कर महिलाएं और युवा घर से ही एक्वास्केप और एक्वेरियम बनाकर अच्छी आय अर्जित कर सकते हैं।"

एक्वास्केपिंग एक ऐसी कला और शिल्प है, जिसमें जलीय पौधों, चट्टानों, पत्थरों, ड्रिफ्टवुड और अन्य सजावटी तत्वों को एक्वेरियम में सौंदर्यपूर्ण ढंग से व्यवस्थित किया जाता है, ताकि पानी के भीतर एक आकर्षक और सामंजस्यपूर्ण परिदृश्य बनाया जा सके। यह डिजाइन, बागवानी और एक्वेरियम रखरखाव के सिद्धांतों को एक साथ जोड़ता है। इससे ऐसा दृश्य तैयार होता है, जो प्राकृतिक जल-पर्यावरण की नकल करता है और देखने में अत्यंत मनमोहक लगता है।

अन्य परिदृश्य या आंतरिक सजावट की तरह, एक्वास्केप भी संतुलन, कंट्रास्ट और अनुपात जैसे डिजाइन सिद्धांतों का पालन करते हैं। इन सिद्धांतों के आधार पर एक्वास्केपर सुव्यवस्थित और दृश्यात्मक रूप से आकर्षक जल परिदृश्य तैयार करते हैं।

एक्वास्केपिंग के प्रमुख तत्वों में जलीय पौधे, हार्डस्केप सामग्री और सब्सट्रेट शामिल होते हैं। जलीय पौधों को अग्रभूमि, मध्यभूमि और पृष्ठभूमि में व्यवस्थित किया जाता है, जिससे पूरे परिदृश्य में गहराई और प्राकृतिक प्रवाह उत्पन्न होता है। चट्टानें,

[1]सहायक प्राध्यापक, बागवानी विभाग, स्नातकोत्तर कृषि महाविद्यालय; [2]सहायक प्राध्यापक, जैव रसायन और पादप शरीर क्रिया विज्ञान विभाग, आधार विज्ञान और मानविकी महाविद्यालय; [3]प्राध्यापक, एक्वाकल्चर विभाग, मत्स्य महाविद्यालय, डा. राजेंद्र प्रसाद केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर-848125 (बिहार)

रीफ स्टाइल एक्वास्केप

रीफ स्टाइल, जिसे मरीन एक्वास्केप भी कहा जाता है, समुद्री वातावरण की सुंदरता को एक्वेरियम में पुनः निर्मित करने पर आधारित है। इसमें जीवित कोरल, समुद्री शैवाल, समुद्री घास, रंग-बिरंगी मछलियां और जटिल चट्टान संरचनाएं शामिल होती हैं। कोरल और चट्टानों को इस तरह व्यवस्थित किया जाता है कि वे प्राकृतिक रीफ की आकृति और छिपने के स्थानों की नकल कर सकें। इस शैली में सबसे महत्वपूर्ण है सही लवणता, तापमान और प्रकाश व्यवस्था। समुद्री जीवों के लिए संतुलित वातावरण बनाए रखना आवश्यक होता है। ध्यानपूर्वक देखभाल और नियमित निगरानी के साथ यह एक अत्यंत आकर्षक, जीवंत और उच्च स्तरीय एक्वास्केप शैली बन जाती है।

पत्थर और ड्रिफ्टवुड जैसे हार्डस्केप तत्व संरचना और दृश्य आकर्षण प्रदान करते हैं तथा प्राकृतिक आवासों की अनुभूति करवाते हैं। वहीं सब्सट्रेट (बजरी, रेत या विशेष मृदा) से पौधों को पोषण प्रदान होता है और पूरे परिदृश्य का स्वरूप प्रभावित होता है। जब इसके साथ रंग-बिरंगी और शांत स्वभाव वाली मछलियां छोड़ी जाती हैं, तो पूरा एक्वास्केप जीवंत हो उठता है। पानी में हल्की हलचल और मछलियों की गतिविधियां पूरे दृश्य को जीवंत, संतुलित और मन को सुकून देने वाला बना देती हैं।

अवतल आकार का एक्वास्केप एक्वेरियम

एक्वास्केप निर्माण

टेबलटॉप एक्वास्केप बनाना एक ऐसा रोचक और रचनात्मक कार्य है, जिसमें छोटी सी जगह में पानी के भीतर एक पूरी लघु दुनिया सजाई जाती है। सीमित स्थान होने के कारण डिजाइनर को हर तत्व को सोच-समझकर रखना होता है, जिससे कल्पनाशीलता और नवाचार दोनों को जगह मिलती है।

टेबलटॉप एक्वास्केपिंग में कई तरह की शैलियां अपनाई जाती हैं। प्रत्येक शैली अपनी अलग पहचान और सौंदर्य प्रस्तुत करती है। इवागुमी शैली सादगी पर आधारित संतुलन होती है, जंगल शैली से भरपूर होती है। इसके अलावा किसी विशेष थीम पर आधारित सजावट इन सभी शैली में हर रूप अपने ढंग से आकर्षक और अनूठा

बायोटोप एक्वेरियम

बायोटोप एक्वेरियम में किसी विशिष्ट प्राकृतिक आवास जैसे-नदी, झील, दलदल या वर्षावन की वास्तविक प्रतिकृति को तैयार किया जाता है। इसमें वहीं पौधे, हार्डस्केप और जलीय जीव शामिल किए जाते हैं, जो उस प्राकृतिक स्थान के मूल निवासी होते हैं। चयनित बायोटोप की सही नकल करने के लिए उसके पर्यावरण, पानी की विशेषताओं, तलछट, पौधों और जीवों का गहन अध्ययन किया जाता है। इस शैली में केवल वही प्राकृतिक तत्व और प्रजातियां उपयोग की जाती हैं, जो वास्तविक बायोटोप में पाई जाती हैं। इससे एक्वेरियम पूर्णतः प्रामाणिक और पारिस्थितिक रूप से सटीक दिखाई देता है।

सारणी 1. भारतीय एक्वेरियम के लिए एक्वास्केप पौधे और सजावटी मछलियां

पौधे का नाम	वैज्ञानिक नाम	प्रकार	प्रकाश आवश्यकता	CO_2 आवश्यकता	विकास की गति	देखभाल का स्तर
अग्रभूमि के पौधे						
बौना बेबीटियर्स	हेमिएन्थस कैलिट्रिकॉइड्स	कार्पेटिंग	उच्च	उच्च	मध्यम	उन्नत
हेयरग्रास	एल्योकारिस पार्वूला	कार्पेटिंग	मध्यम-उच्च	मध्यम	मध्यम	मध्यवर्ती
मॉन्टेकार्लो	माइक्रैंथेमम ट्वीडीआई	कार्पेटिंग	मध्यम-उच्च	मध्यम	तेज	मध्यवर्ती
मध्यभूमि के पौधे						
जावाफर्न	माइक्रोसोरम टेरोपस	एफिाइट	निम्न-मध्यम	कोई नहीं	धीमा	आसान
क्रिप्टोकोराइन वेंडटी	क्रिप्टोकोराइन वेंडटीआई	रोसेट	निम्न-मध्यम	निम्न	धीमा	आसान
पृष्ठभूमि के पौधे						
वैलिस्नेरिया	वैलिस्नेरिया स्पाइरैलिस	घास जैसा	निम्न-मध्यम	कोई नहीं	तेज	आसान
कैबोम्बा	कैबोम्बा कैरोलिनियाना	तना	मध्यम-उच्च	मध्यम	तेज	मध्यवर्ती
तैरते पौधे						
जल कुंभी	पिस्टिया स्ट्रैटिओटेस	तैरता	मध्यम	कोई नहीं	बहुत तेज	आसान
जल सलाद	सल्वीनिया नैटन्स	तैरता	मध्यम	कोई नहीं	बहुत तेज	आसान

सारणी 2. एक्वास्केपिंग हेतु उपयुक्त सजावटी मछलियां

मत्स्य प्रजाति	वैज्ञानिक नाम	मूल स्थान	आकार (सें.मी.)	स्वभाव	टैंक का आकार (लीटर)	पानी के पैरामीटर	समूह का आकार
छोटी सामुदायिक मछलियां							
जेब्राडानियो	डैनियो रेरीओ	भारत-बांग्लादेश	5-6	सक्रिय शांति प्रिय	40+	पी-एच 6.5-7.5, 18-25^{O} से.	5+
रासबोरा	ट्राइगोनोस्टिग्मा हेटरोमार्फा	दक्षिण-पूर्व एशिया	4-5	शांति प्रिय	40+	पी-एच 6.0-7.5, 22-28^{O} से.	6+
केंद्रीय मछलियां							
हनीगुरामी	ट्राइकोगास्टर चूना	भारत-बांग्लादेश	5-7	शांति प्रिय	60+	पी-एच 6.5-7.5, 22-28^{O} से.	जोड़ा
पर्लगुरामी	ट्राइकोपोडस लेरीई	दक्षिण-पूर्व एशिया	10-12	शांति प्रिय	150+	पी-एच 6.0-8.0, 24-28^{O} से.	जोड़ा
तलहटी निवासी							
ब्रिसलनोसप्लेको	ऐन्सिस्ट्रस सिर्रोहस	दक्षिण अमेरिका	12-15	शांति प्रिय	150+	पी-एच 6.5-7.5, 20-28^{O} से.	अकेला
कुहलीलोच	पैन्जियो कुहली	दक्षिण-पूर्व एशिया	8-12	शांति प्रिय	80+	पी-एच 6.0-7.0, 24-28^{O} से.	3+
भारतीय मूल की प्रजातियां							
ग्लास कैटफिश	क्रिप्टॉप्टेरस विट्रीओलस	दक्षिण-पूर्व एशिया/भारत	10-15	शांति प्रिय	200+	पी-एच 6.0-7.0, 22-26^{O} से.	3+
फ्लाइंग बार्ब	एसोमस डैनरिकस	भारत	8-12	सक्रिय शांति प्रिय	100+	पी-एच 6.5-7.5, 20-28^{O} से.	5+
झींगा और अकशेरुकी							
अमानो श्रिंप	कैरीडीना मल्टिडेंटाटा	जापान	4-6	शांति प्रिय	40+	पी-एच 6.5-7.5, 20-26^{O} से.	3+
मिस्ट्री स्नेल	पोमेशिया ब्रिजीआई	दक्षिण अमेरिका	5-6	शांति प्रिय	कोई भी	पी-एच 7.0-8.0, 20-28^{O} से.	व्यक्तिगत

होता है। इन शैलियों की समझ होने से यह तय करना आसान हो जाता है कि अपने एक्वेरियम के लिए कौन सा तरीका सबसे उपयुक्त रहेगा।

विभिन्न शैलियों पर प्रयोग करते हुए न केवल कौशल विकसित होता है, बल्कि अपनी व्यक्तिगत एक्वास्केपिंग पसंद भी स्पष्ट होती जाती है। जैसे-जैसे अनुभव बढ़ता है, उतने ही बेहतर और अधिक स्वाभाविक जल परिदृश्य तैयार किए जा सकते हैं।

इवागुमी शैली

इवागुमी एक ऐसी एक्वास्केपिंग शैली है, जिसमें चट्टानों को मुख्य केंद्र बिंदु बनाया जाता है। इसका लक्ष्य कम तत्वों के साथ एक शांत, संतुलित और प्राकृतिक दृश्य तैयार करना होता है। जापानी मूल की इस शैली में चट्टानों की स्थिति, आकार और सामंजस्य सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है। इन्हें आमतौर पर रूल ऑफ थर्ड्स के अनुसार तीन या पांच की विषम संख्या में व्यवस्थित किया जाता है, जिससे दृश्य स्वाभाविक और आकर्षक दिखाई देता है। पौधों का प्रयोग सीमित रखा जाता है-अधिकतर कम ऊंचाई वाले कालीन जैसे या हल्के पृष्ठभूमि के पौधे, ताकि चट्टानों की संरचना पूरी तरह उभरकर सामने आए।

तेजी से बढ़ रही एक्वास्केपिंग की लोकप्रियता

नेचर एक्वेरियम

यह शैली प्राकृतिक परिदृश्यों जैसे-नदियां, झीलें, जंगल या पहाड़ की प्रतिकृति पर आधारित होती है। इसका उद्देश्य एक मछलीघर में वास्तविक दुनिया जैसी गहराई, संतुलन और प्राकृतिक प्रवाह दिखाना है। इसमें पौधों को अग्रभूमि, मध्यभूमि और पृष्ठभूमि की परतों में सजाकर एक घना और वास्तविक जैसा दृश्य बनाया जाता है। डिजाइन में दृश्य प्रवाह पर विशेष ध्यान दिया जाता है, ताकि लेआउट पानी के प्राकृतिक बहाव जैसा लगे। इसके

लिए विभिन्न प्रजातियों के पौधों का मिश्रण उपयोग किया जाता है। अग्रभूमि में कालीन जैसे पौधे, जबकि पीछे ऊंचे पौधे रखकर प्राकृतिक वातावरण की विविधता प्रदर्शित की जाती है।

डच शैली

इस शैली में प्राकृतिक परिदृश्य की नकल नहीं की जाती, बल्कि पौधों की रंगीन और कलात्मक व्यवस्था पर जोर दिया जाता है। इसमें पौधे अग्रभूमि, मध्यभूमि और पृष्ठभूमि में व्यवस्थित किए जाते हैं। इसमें कई तरह की पौधों की प्रजातियां शामिल होती हैं, जिनमें रंग, आकार और बनावट की स्पष्ट विविधता दिखाई देती है। इससे एक्वेरियम को जीवंत और आकर्षक रूप मिलता है।

जंगल शैली

इस एक्वास्केपिंग शैली में घना, ऊंचा और प्राकृतिक वन जैसा परिदृश्य बनाया जाता है। इसमें पौधों को अपेक्षाकृत स्वतंत्र रूप से बढ़ने दिया जाता है, जिससे उनका आपस में जुड़ाव एक स्वाभाविक, जंगली रूप प्रदान करता है। अत्यधिक छंटाई से बचा जाता है, ताकि प्राकृतिक घनत्व बना रहे। इसमें लंबे, मध्यम और छोटे पौधों की परतें मिलकर गहराई और ऊंचाई का प्रभाव बनाती हैं। तेजी से बढ़ने वाली और मजबूत प्रजातियां अधिक उपयोग होती हैं, जिससे एक्वेरियम में जीवंत, घना और वन जैसा दृश्य तैयार होता है।

थीम्ड एक्वास्केप

थीम्ड एक्वास्केप ऐसी रचनात्मक शैली है जिसमें पूरा एक्वेरियम किसी विशिष्ट विषय या कल्पना आधारित अवधारणा जैसे-पानी के नीचे का महल, डूबा हुआ जहाज, प्राचीन खंडहर या काल्पनिक दुनिया के आसपास डिजाइन किया जाता है। इसमें प्राकृतिक तत्वों के साथ-साथ सजावटी और कलात्मक वस्तुओं का उपयोग भी किया जाता है, जो वास्तविक पर्यावरण में आवश्यक रूप से नहीं मिलते। इस शैली में सबसे महत्वपूर्ण है चयन की गई थीम के अनुरूप सभी तत्वों का सुसंगत और सामंजस्यपूर्ण संयोजन। पौधों का चयन भी थीम के अनुसार किया जाता है और कई बार वास्तविक व कृत्रिम दोनों प्रकार के तत्वों का संतुलित मिश्रण शामिल किया जाता है। इससे संपूर्ण एक्वास्केप जीवंत, अभिव्यक्तिपूर्ण और आकर्षक दिखाई देता है।

एक्वास्केप डिजाइन के सिद्धांत और तत्व

टेबलटॉप एक्वास्केप तैयार करना एक रचनात्मक प्रक्रिया है। इसमें कला, सौंदर्यबोध और प्राकृतिक विज्ञान का संतुलित मेल होता है। उचित योजना, सूक्ष्म अवलोकन और छोटे-छोटे विवरणों पर ध्यान देकर एक सुंदर लघु जलीय संसार निर्मित किया जा सकता है, जो न केवल सजावटी आकर्षण प्रदान करता है, बल्कि डिजाइनर की कल्पनाशीलता का प्रमाण भी बनता है।

थीम

एक्वास्केप शुरू करने से पहले इसकी थीम या अवधारणा तय करना सबसे महत्वपूर्ण कदम है। यह थीम किसी प्राकृतिक परिदृश्य जैसे-नदी किनारा, झील का तल या वन दृश्य पर आधारित हो सकती है या फिर पूरी तरह कलात्मक और कल्पनाशील भी हो सकती है। एक स्पष्ट थीम कहानी कहने में मदद करती है और पूरा परिदृश्य अधिक जीवंत, अर्थपूर्ण तथा सुसंगत दिखाई देता है।

स्केल और अनुपात

एक्वास्केप मूल रूप से एक लघु दुनिया का प्रतिनिधित्व करता है, इसलिए टेबलटॉप एक्वेरियम में प्रत्येक तत्व का आकार और अनुपात अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। छोटे आकार के पौधों, पत्थरों और सजावटी वस्तुओं का चयन गहराई और संतुलन उत्पन्न करता है। 'थर्ड्स के नियम' जैसे डिजाइन सिद्धांतों का प्रयोग रचना को अधिक प्रभावी और सौंदर्यपूर्ण बनाता है।

हार्डस्केप का रचनात्मक उपयोग

एक्वास्केप को आकर्षक बनाने के लिए फोकल पाइंट्स को केंद्रीय स्थान से हटकर रखना बेहतर होता है। इसके लिए होर्डस्केप सामग्री जैसे ड्रिफ्टवुड के छोटे टुकड़े, लघु चट्टानें या सिरेमिक जैसी अनोखी वस्तुओं का प्रयोग लेआउट को रोचक बनाता है। चट्टानों और ड्रिफ्टवुड की परतें प्राकृतिक भू-आकृति का अहसास करवाती

एक्वास्केपिंग में व्यवसाय मॉडल

- **कस्टम एक्वास्केप डिजाइन:** घर, कार्यालय, रिसेप्शन, होटलों और व्यावसायिक परिसरों के लिए विशेष रूप से तैयार किए गए कस्टम एक्वास्केप डिजाइन सेवाएं प्रदान की जा सकती हैं। स्थान, प्रकाश व्यवस्था, ग्राहक की पसंद और उपलब्ध क्षेत्र के अनुसार विकसित किए गए ये डिजाइन प्रीमियम श्रेणी में उच्च मूल्य पर उपलब्ध करवाएं जाते हैं।
- **एक्वास्केपिंग किट और आपूर्ति:** ऐसे संपूर्ण एक्वास्केपिंग किट विकसित किए जा सकते हैं, जो शुरुआती उपयोगकर्ताओं के लिए उपयोगी हों। इनमें सब्सट्रेट, उपयुक्त जलीय पौधे, हार्डस्केप सामग्री, लाइटिंग और सेटअप निर्देश शामिल हों। इसके साथ ही, प्रीमियम सब्सट्रेट, विशेष पौधों के उर्वरक, एलईडी प्रकाश प्रणाली, ड्रिफ्टवुड, काई, विशेष चट्टानें और अन्य हार्डस्केप सामग्री अलग से भी उपलब्ध करवाई जा सकती हैं।
- **रखरखाव:** एक्वास्केप की खूबसूरती बनाए रखने के लिए नियमित सेवाएं जैसे पौधों की छंटाई, सब्सट्रेट साफ करना, पानी की गुणवत्ता जांचना और फिल्टर रखरखाव प्रदान की जा सकती हैं।
- **आपातकालीन सेवा:** उपकरण खराब होने, पानी के पैरामीटर बिगड़ने, पौधों या मछलियों के स्वास्थ्य में समस्या आने पर त्वरित निवारण सेवाएं भी व्यवसाय का महत्वपूर्ण हिस्सा हो सकती हैं।
- **शैक्षिक कार्यशालाएं और प्रशिक्षण:** एक्वास्केपिंग तकनीकों, उपयुक्त पौधों के चयन, हार्डस्केप व्यवस्था, जैविक संतुलन और टैंक सेटअप पर व्यावहारिक कार्यशालाएं आयोजित की जा सकती हैं। डिजिटल माध्यम से ऑनलाइन पाठ्यक्रम, वीडियो ट्यूटोरियल और वेबिनार तैयार कर दूरस्थ शिक्षार्थियों तक पहुंचा जा सकता है, जिससे अतिरिक्त आय उत्पन्न होती है।
- **खुदरा एवं ऑनलाइन बिक्री:** एक्वास्केपिंग से संबंधित सभी आवश्यक सामग्री-सब्सट्रेट, पौधे, सजावटी वस्तुएं, उपकरण, फिल्टर, लाइटिंग बेचने के लिए एक विशेष स्टोर स्थापित किया जा सकता है।
- **ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म:** ऑनलाइन स्टोर के माध्यम से पूरे देश में ग्राहकों तक पहुंच बनाकर पौधे, हार्डस्केप सामग्री, उपकरण और सहायक वस्तुएं बेची जा सकती हैं। इससे ग्राहक आधार बढ़ता है और व्यवसाय तेजी से विस्तार पा सकता है।

हैं और गहराई जोड़ती हैं। इसके अतिरिक्त सौम्य जल प्रवाह या बुलबुले जैसी लघु जल सुविधाएं जोड़कर पूरी रचना में जीवंतता बढ़ाई जा सकती है।

जलीय पौधे

एक्वास्केप में रंग, बनावट और प्राकृतिक सुंदरता जोड़ने के लिए छोटे जलीय पौधों की विविध प्रजातियों का उपयोग प्रभावी रहता है। अलग-अलग पत्ती आकार और बनावट वाले पौधों को समूहों में लगाकर संतुलित और स्वाभाविक दृश्य बनाया जा सकता है। कई डिजाइनर न्यूनतम शैली के लिए एक ही प्रजाति का उपयोग करते हैं, जबकि तेजी से बढ़ने वाले पौधे लेआउट में ताजगी और गतिशीलता जोड़ते हैं।

सफल एक्वास्केपिंग के लिए नियमित छंटाई, सफाई और जल की गुणवत्ता का ध्यान जरूरी है। अच्छी देखभाल से एक्वास्केप समय के साथ और भी सुंदर दिखाई देता है। सारणी-1 में उपयोग किए जाने योग्य कुछ प्रमुख सजावटी पौधों की सूची दी गई है।

प्रकाश व्यवस्था

एक्वास्केप के दृश्य प्रभाव को निखारने में उचित प्रकाश की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। एक्वेरियम विशिष्ट एलईडी लाइटों का उपयोग करके कुछ विशिष्ट स्थानों को अधिक उजागर कर सकते हैं। समायोज्य (एडजस्टेबल) प्रकाश व्यवस्था अलग-अलग दृश्य वातावरण तैयार करती है और डिजाइन के विभिन्न तत्वों जैसे-पौधों की बनावट, रंग और हार्डस्केप को सुंदर ढंग से प्रदर्शित करती है। इच्छित प्रभाव प्राप्त करने के लिए गर्म और ठंडे दोनों प्रकार के रंग तापमानों के साथ प्रयोग किया जा सकता है, क्योंकि प्रकाश का रंग पौधों और चट्टानों की रंगत तथा पूरे एक्वास्केप के वातावरण को बदल सकता है।

मछलियां और अन्य जीव

एक्वास्केप का मुख्य केंद्र भले ही पौधों और हार्डस्केप की संरचना पर रहता है, लेकिन मछलियों (सारणी-2) और अन्य जलीय जीवों का चयन भी समान रूप से महत्वपूर्ण है। चयन की गई मत्स्य प्रजातियां एक्वास्केप की सौंदर्य धारणा के अनुरूप हों और उसके संतुलित पारिस्थितिकी तंत्र का हिस्सा बनें। छोटे आकार की मछलियां और जलीय जीव बिना अधिक स्थान घेरे गतिशीलता जोड़ते हैं और डिजाइन को जीवंत बनाते हैं। इनकी हलचल पानी में स्वाभाविक प्रवाह और जीवन का एहसास करवाती है। साथ ही, यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि चयन किए गए पौधों तथा निर्मित समग्र जलीय वातावरण एक-दूसरे के लिए अनुकूल हों, ताकि पूरा एक्वास्केप स्वस्थ और संतुलित बना रहे।

पानी और फिल्टर व्यवस्था

यह सुनिश्चित करना कि फिल्टर व्यवस्था टेबलटॉप एक्वेरियम के आकार के लिए उपयुक्त हो, ताकि पानी साफ रहे। स्वच्छ पानी डिजाइन को बेहतर रूप से प्रदर्शित करने में मदद करता है और पूरे एक्वास्केप को आकर्षक बनाए रखने के लिए आवश्यक है।

रखरखाव और देखभाल

पौधों की छंटाई, सब्सट्रेट की सफाई और पानी के मापदंडों की जांच सहित नियमित देखभाल एक्वास्केप को ताजा और संतुलित बनाए रखती है। जैसे-जैसे एक्वास्केप परिपक्व होता है, समय-समय पर छोटे-छोटे समायोजन करना आवश्यक हो सकता है। कई बार छोटे बदलाव भी समग्र रूप और कार्यक्षमता में सुधार कर देते हैं।

एक व्यवसाय के रूप में एक्वास्केपिंग रचनात्मकता और आर्थिक अवसरों का अनूठा संयोजन प्रस्तुत करती है। डिजाइन कौशल का प्रभावी उपयोग, बाजार की मांगों की समझ और गुणवत्तापूर्ण सेवाएं प्रदान करके कोई भी उद्यमी इस क्षेत्र में सफल व्यवसाय स्थापित कर सकता है। कस्टम डिजाइन सेवाओं, खुदरा आपूर्ति, ऑनलाइन विपणन या प्रशिक्षण एवं कार्यशालाओं के माध्यम से यह क्षेत्र लगातार विस्तार कर रहा है।

जलीय परिदृश्यों के प्रति बढ़ती रुचि इसे एक आकर्षक और लाभकारी करियर विकल्प बनाती है। कुल मिलाकर, एक्वास्केपिंग उन लोगों के लिए एक प्रेरणादायक और पुरस्कृत मार्ग है जो रचनात्मकता और प्रकृति के सम्मिलन से नए व्यावसायिक आयाम तलाशना चाहते हैं। ■

भाकृअनुप की मासिक लोकप्रिय पत्रिका
'खेती' मार्च, 2026 अंक के प्रमुख आकर्षण

- पशुपालन के लिए पोषण का हरित भंडार है अजोला
- आधुनिक खेती में ड्रोन तकनीक का महत्व
- त्वरित कंपोस्टिंग तकनीक से फसल अवशेष का पुनर्चक्रण
- उड़द में समन्वित खरपतवार प्रबंधन
- मिलेट-मछली-पशुपालन आधारित एकीकृत खेती मॉडल
- मौसम की समझ, मत्स्य पालन में सफलता की कुंजी
- गर्मी से तनावग्रस्त दुधारू गायों में सूक्ष्म पोषक तत्वों का महत्व
- भारतीय कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका
- मकई रेशम का प्रसंस्करण और उपयोग
- विकसित कृषि संकल्प अभियान एक उत्कृष्ट पहल

संपर्क सूत्र: प्रभारी, व्यवसाय एकक, भाकृअनुप-कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, कैब-1, पूसा गेट, नई दिल्ली-110012
दूरभाष: 25843657, www.icar.org.in

सर्दियों में पशुधन का प्रभावी प्रबंधन

जय प्रकाश[1] और **डी.के. राणा**[2]

"सर्दी का मौसम डेरी पशु पालकों के लिए एक अनोखी चुनौती प्रस्तुत करता है, जो सीधे तौर पर पशुधन की उत्पादकता को प्रभावित करती है। ठंडा तापमान, नमीयुक्त वातावरण और चारे की सीमित उपलब्धता के कारण पशु झुंड के स्वास्थ्य एवं उत्पादन को बनाए रखने के लिए विशेष और सावधानीपूर्वक प्रबंधन की आवश्यकता होती है। जैसे-जैसे सर्दी बढ़ती है और तापमान गिरता है, डेरी पशु पालकों के सामने अपने पशुओं को ठंड के प्रतिकूल प्रभावों से सुरक्षित रखने की चुनौती और भी गंभीर हो जाती है। यदि उचित देखभाल न की जाए, तो इससे दूध उत्पादन में कमी, रोगों के प्रति संवेदनशीलता में वृद्धि तथा गंभीर परिस्थितियों में पशुओं की मृत्यु तक हो सकती है। पशुधन को अपने शरीर का सामान्य तापमान लगभग 101-102 डिग्री बनाए रखने के लिए अतिरिक्त ऊर्जा खर्च करनी पड़ती है, जो सर्दी में एक बड़ी चुनौती बन जाती है। हालांकि, यदि प्रभावी प्रबंधन रणनीतियां अपनाई जाएं, तो डेरी किसान न केवल अपने पशुओं की भलाई सुनिश्चित कर सकते हैं, बल्कि पूरे सर्दी के मौसम में इष्टतम दूध उत्पादन भी बनाए रख सकते हैं।"

भारत के कुछ राज्यों में सर्दी के दौरान चरम मौसम की स्थिति देखने को मिलती है, जब तापमान सामान्य से काफी नीचे चला जाता है। ऐसी प्रतिकूल मौसमीय परिस्थितियों में न केवल पशु, बल्कि मानव भी अपने सामान्य शारीरिक कार्यों को सुचारू रूप से नहीं कर पाते। वर्तमान में दिल्ली क्षेत्र सहित उत्तर भारत के कई हिस्सों में तापमान में लगातार गिरावट दर्ज की जा रही है, जो दिसंबर से फरवरी के दौरान अपने चरम पर होती है। इस प्रकार की कठोर जलवायु परिस्थितियों में पशुधन, विशेषकर स्तनपान करवाने वाले एवं गर्भवती पशुओं का समुचित प्रबंधन करना डेरी पशु पालकों के लिए एक बड़ी चुनौती बन जाता है।

[1]वैज्ञानिक, पशुपालन; [2]अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केंद्र, नई दिल्ली

आश्रय प्रबंधन

प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों से पशुधन को सुरक्षित रखने में आश्रय प्रबंधन एक अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसे स्थानीय स्तर पर आसानी से उपलब्ध सामग्रियों जैसे-बांस, ताड़पत्र, सूखी घास, धान का पुआल, गिनी बैग एवं जूट बैग आदि का उपयोग करके प्रभावी रूप से अपनाया जा सकता है। सर्दी के मौसम में धूप की उपलब्धता सीमित रहती है तथा अधिकांश समय बादल और कोहरा छाया रहता है, जिससे पशुओं को अतिरिक्त ठंड का सामना करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में यह विशेष रूप से ध्यान रखना आवश्यक है कि शेड का फर्श गीला न रहे, जल निकासी प्रणाली मानक और सुचारू हो तथा स्वच्छता बनाए रखने के लिए शेड की दिन में कम से कम तीन बार सफाई की जाए। सर्दियों के दौरान पशुओं में निमोनिया, बुखार एवं दस्त जैसे रोग सामान्य रूप से देखने को मिलते हैं, जिनके गंभीर होने पर मृत्यु की आशंका भी बनी रहती है।

सर्दियों में बछड़ों की देखभाल से बेहतर वृद्धि

बिछावन

फर्श के साथ सीधे संपर्क में रहने से पशुधन के शरीर के तापमान की हानि

अधिक होती है। ठंडी जलवायु परिस्थितियों में पशुओं को गर्म और आरामदायक बनाए रखने के लिए उपयुक्त बिछावन (भूसा) का प्रबंधन अत्यंत महत्वपूर्ण है। बड़े पशुधन के लिए 4-6 इंच तथा छोटे पशुधन के लिए लगभग 2 इंच गहराई तक बिछावन बिछाने की सलाह दी जाती है।

बिछावन के रूप में धान का पुआल, सूखी घास, गेहूं का भूसा आदि सामग्री का उपयोग किया जाना चाहिए। वर्तमान समय में पशुधन को ठंड से बचाने के लिए विभिन्न व्यावसायिक बिछावन सामग्री भी उपलब्ध हैं, जो प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों से अतिरिक्त सुरक्षा प्रदान करती हैं।

साथ ही, शेड एवं शालिका को स्वच्छ बनाए रखने के लिए उचित वेंटिलेशन भी आवश्यक है, जिससे शेड में उत्पन्न अमोनिया जैसी हानिकारक गैसों का निष्कासन हो सके और पशुधन का स्वास्थ्य सुरक्षित रहे।

व्यक्तिगत स्वच्छता एवं पोषण

पशुओं की नियमित रूप से नरम कपड़े या ब्रश की सहायता से सफाई करनी चाहिए, जिससे त्वचा स्वच्छ रहे और रक्त संचार में सुधार हो। शीत ऋतु के दौरान पशुओं के बाल नहीं काटने चाहिए तथा ठंडे पानी से स्नान करवाने से बचना चाहिए। इससे शरीर का तापमान तेजी से गिर सकता है। सर्दियों के मौसम में जब पर्यावरणीय तापमान 10 डिग्री सेल्सियस से घटकर 5 डिग्री सेल्सियस या उससे कम हो जाता है, तब पशुधन के सामान्य शारीरिक कार्यों को बनाए रखने के लिए शरीर का आंतरिक तापमान लगभग 101-102 डिग्री फारेनहाइट तक स्थिर रहना आवश्यक होता है। इस तापमान को बनाए रखने के लिए पशुओं के आहार में अतिरिक्त ऊर्जा एवं प्रोटीन की आवश्यकता होती है। अत: सर्दियों में संतुलित एवं पोषक आहार के साथ ऊर्जा और प्रोटीन युक्त पूरकों का समुचित समावेशन करना चाहिए।

बकरियों के लिए गर्म आश्रय जरूरी

आहार प्रबंधन

ठंड के मौसम की स्थिति से निपटने के लिए पशु अपनी हृदय गति और श्वसन को बढ़ाकर शरीर में गर्मी उत्पादन करते हैं। इससे रक्त प्रवाह बढ़ता है और पशु को ठंड से बचाता है। पशुओं को अपने शरीर की स्थिति और दूध उत्पादन को बनाए रखने के लिए अधिक आहार की आवश्यकता होती है। ठंड के मौसम में मवेशियों और भैंसों को 20 प्रतिशत अधिक चारे की आवश्यकता हो सकती है। सर्दियों के मौसम के दौरान पशुधन शरीर में अधिक गर्मी के उत्पादन के लिए सामान्य से 10 से 30 प्रतिशत अधिक आहार का उपभोग करते हैं। इस महत्वपूर्ण समय के दौरान पशुओं को पौष्टिक और संतुलित आहार प्रदान किया जाना चाहिए, जैसे-बरसीम, विभिन्न प्रकार की खली जैसे-बिनौला, सरसों की खली, मूंगफली की खली और सोयाबीन प्रोटीन से भरपूर होते हैं। ठंडे तापमान से निपटने के लिए पशुधन में बालों का आवरण (मुख्य रूप से गायों में) उन्हें ठंड रोकने में मदद करता है और अपने शरीर में गर्मी का उत्पादन बढ़ाते हैं। वे अपनी हृदय गति और श्वसन को बढ़ाकर इसे पूरा करते हैं। इस प्रकार अपने चरम सीमाओं को ठंड से बचाने के लिए रक्त प्रवाह में वृद्धि करते हैं। यद्यपि यह शारीरिक प्रतिक्रिया पशुधन को सापेक्ष आराम में बेहद कम तापमान का सामना करने में सक्षम बनाती है, लेकिन उन्हें अपने शरीर के वजन और दूध उत्पादन को बनाए रखने के लिए अधिक गुणवत्तायुक्त आहार की भी आवश्यकता होती है। पशुओं को हाइड्रेटेड रखने के लिए साफ और गुनगुना ताजा पानी भी उपलब्ध करवाया जाना चाहिए। शीतकालीन प्रबंधन के लिए सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा पर्याप्त मात्रा में आहार और पानी प्रदान करना है। अधिक गर्मी के उत्पादन के लिए खनिज मिश्रण सांद्रित करें। अधिक गर्मी उत्पन्न करने के लिए आहार में वसा या तेल और गुड़ का मिश्रण बढ़ाएं। यह समय पशुओं के कृमिनाशक और एफएमडी, रक्तस्रावी सेप्टीसीमिया, एंटरोटॉक्सिमिया, ब्लैक क्वार्टर आदि के खिलाफ टीका लगाने का सही समय है और यह सुनिश्चित करें।

अत्यधिक ठंड की परिस्थितियों में छोटे पशुधन का प्रबंधन

नवजात बछड़े खुले आश्रय में अपने शरीर के तापमान को प्रभावी रूप से नियंत्रित नहीं कर पाते, इसलिए उनके प्रबंधन में विशेष सावधानी आवश्यक है। उन्हें गर्म एवं सूखा रखने के लिए पुआल जैसे-सूखे, कार्बनिक पदार्थों से बने बिछावन का उपयोग किया जाना चाहिए। यह शरीर से होने वाली ऊष्मा हानि को कम करता है। इसके विपरीत, रेत जैसी-अकार्बनिक बिस्तर सामग्री ऊष्मा को अवशोषित कर लेती है, जिससे शरीर का तापमान तेजी से गिरने की समस्या उत्पन्न हो सकती है।

बकरियों, बछड़ों एवं अन्य छोटे पशुधन को ठंड से अतिरिक्त सुरक्षा प्रदान करने के लिए साफ और सूखे कंबल या बोरी का उपयोग लाभकारी होता है। अत्यधिक ठंड में बकरियां अपने शरीर का तापमान बनाए रखने के लिए सामान्य से अधिक चारा ग्रहण करती हैं। अत: उनकी शारीरिक स्थिति को बनाए रखने हेतु उच्च गुणवत्ता वाली घास के साथ-साथ अन्न, जौ, गेहूं, जई आदि अनाज आहार में शामिल करना चाहिए।

छोटे पशु के लिए विशेष प्रबंधन आवश्यक

नवजात बछड़े की थर्मल न्यूट्रल रेंज लगभग 50 से 78 डिग्री फारेनहाइट के बीच होती है, हालांकि यह हवा की गति, नमी, बालों की मोटाई तथा बिछावन की गुणवत्ता जैसे कारकों पर भी निर्भर करती है। जन्म के 1-2 घंटे के भीतर नवजात को अनिवार्य रूप से कोलोस्ट्रम (मां का प्रारंभिक दूध) पिलाना चाहिए। कोलोस्ट्रम में उपस्थित इम्युनोग्लोबुलिन नवजात की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं तथा इसके गुणों के कारण पहला मल (म्यूकोनियम) आसानी से बाहर निकल जाता है।

सर्दियों के मौसम में स्वस्थ एवं उत्पादक पशुपालन सुनिश्चित करने के लिए उपर्युक्त प्रबंधन उपायों का पालन अत्यंत आवश्यक है। ■

पर्वतीय क्षेत्रों में बीज संरक्षण एवं सामुदायिक बीज बैंक सुदृढ़ीकरण

अनुराधा भारतीय[1], जोगेन्द्र सिंह बिष्ट[2], नव प्रभात[3], जे.पी. अदित्य[1], पंकज सिंह चौहान[2], हेमलता जोशी[1], निर्मल कुमार हेड़ाऊ[1] और लक्ष्मी कांत[1]

"उत्तर-पश्चिमी हिमालयी राज्य उत्तराखंड पारंपरिक फसल विविधता का भंडार है, जो यहां के पर्वतीय क्षेत्रों में आहार विविधता, पोषण और आजीविका सुरक्षा सुनिश्चित करता है। पर्वतीय क्षेत्रों की विशेष भौगोलिक और जलवायुवीय परिस्थितियां इस क्षेत्र की पारंपरिक फसलों को उत्कृष्ट गुणवत्ता प्रदान करती हैं, जिससे उन्हें बाजार में बेहतर मूल्य प्राप्त होता है। वर्तमान में इस पारंपरिक कृषि जैव विविधता का तेजी से क्षरण हो रहा है। कृषक समुदाय इसकी पूर्ण क्षमताओं से लाभान्वित नहीं हो पा रहे हैं। इस स्थिति को देखते हुए, पारंपरिक फसलों की कृषक प्रजातियों का राष्ट्रीय स्तर पर पादप किस्म एवं कृषक अधिकार संरक्षण प्राधिकरण, नई दिल्ली द्वारा संरक्षण एवं स्थानीय बीज बैंकों के माध्यम से स्थानीय बीज प्रणालियों का सशक्तिकरण, मूल्य शृंखला तथा प्रसंस्करण के विकास के प्रयास किए गए। ये प्रयास उत्तराखंड के अल्मोड़ा और टिहरी जिलों के 17 गांवों में कृषक सहभागिता के माध्यम से क्रियान्वित किए गए। अनुसंधान संस्थानों, गैर-सरकारी संगठनों और ग्रामीण समुदायों के समन्वित प्रयासों से इन लक्षित क्षेत्रों में न केवल पारंपरिक किस्मों के संरक्षण के लिए जागरूकता बढ़ी, बल्कि बीज बैंकों के माध्यम से पारंपरिक फसलों की गुणवत्तायुक्त बीजों की उपलब्धता में सुधार तथा इनके प्रसंस्करित उत्पादों के माध्यम से विपणन एवं रोजगार के नए अवसर भी सृजित हुए। यह प्रयास पर्वतीय क्षेत्रों में पारंपरिक फसल किस्मों के संरक्षण, संवर्धन और व्यावसायीकरण का एक सफल मॉडल प्रस्तुत करता है, जिसे व्यापक स्तर पर अपनाकर किसानों की आय, पोषण सुरक्षा एवं कृषक अधिकार संरक्षण को और अधिक सुदृढ़ किया जा सकता है।"

[1]भाकृअनुप-विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा (उत्तराखंड); [2]लोक चेतना मंच, रानीखेत (उत्तराखंड); [3]एमवीडीए, डोणी, टिहरी (उत्तराखंड)

खाद्य फसलों पर आधारित वर्तमान व्यावसायिक कृषि प्रणाली भविष्य में गंभीर चुनौतियों का सामना कर सकती है। इसके साथ ही जलवायु परिवर्तन के इस दौर में मुख्य खाद्य फसलों पर अति निर्भरता के कारण उपजी पोषण संबंधी समस्याएं, कृषि-जैव विविधता एवं पर्यावरण क्षरण जैसी समस्याओं से निपटने हेतु कृषि एवं खाद्य प्रणाली में विविधता लाना आवश्यक हो गया है।

उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों की स्थानीय खाद्य प्रणाली में मुख्य अनाज फसल के साथ-साथ कई स्थानीय पोषणयुक्त फसलें जैसे श्री अन्न, छद्म अनाज, दालें, तिलहन, सब्जियां और जंगली खाद्य पौधे शामिल हैं, जिन्हें पीढ़ियों से उगाया और उपयोग किया जा रहा है। ये फसलें आहार विविधता, स्वास्थ्य, पोषण एवं स्थानीय लोगों की आजीविका के साथ-साथ पारिस्थितिक तंत्र को भी स्वस्थ बनाए रखने में सहायक हैं। इसके साथ ही इन फसलों की कठोर पर्यावरणीय परिस्थितियों में अनुकूलन की क्षमता भी है।

वर्तमान में, पारंपरिक फसलों पर आधारित स्थानीय खाद्य प्रणालियों को वैश्विक स्तर पर मान्यता मिल रही है। यह अधिक स्वास्थ्यवर्धक, टिकाऊ एवं सामाजिक, आर्थिक तथा पर्यावरणीय रूप से टिकाऊ है। साथ ही यह लघु आपूर्ति शृंखला के माध्यम से ग्रामीण विकास में योगदान है तथा कृषकों को लाभ पहुंचा सकती है।

कृषकों को लाभ पहुंचाने के उद्देश्य से पारंपरिक फसलों की प्रजातियों का राष्ट्रीय स्तर पर संरक्षण, गांव-स्तरीय बीज बैंकों के माध्यम से स्थानीय बीज प्रणालियों का सशक्तिकरण, मूल्य शृंखला तथा प्रसंस्करण के विकास हेतु विभिन्न गतिविधियां उत्तराखंड के रमणा न्याय पंचायत, अल्मोड़ा तथा भिलंगना घाटी, टिहरी के 17 गांवों में किसान सहभागिता के माध्यम से संपन्न की गयीं, जिनका विवरण आगे किया जा रहा है:

बीजों का संरक्षण

पारंपरिक फसल विविधता का कृषक सहभागी चयन एवं स्थानीय बीज प्रणाली सुदृढ़ीकरण

उत्तराखंड में हाल के वर्षों में किसानों के खेतों से फसल विविधता तेजी से समाप्त हो रही है। इसका प्रमुख कारण पारंपरिक फसलों का उच्च उत्पादकता वाली किस्मों द्वारा प्रतिस्थापन, गैर-पारंपरिक आहार में रुचि एवं पसंद में बदलाव आदि हैं। इन कारणों से कई स्थानीय पारंपरिक फसलें एवं किस्में अब विलुप्ति की कगार पर हैं। अत: चयनित क्षेत्रों में फसल विविधता को पुन: स्थापित करने हेतु 174 परिवारों के साथ सामूहिक चर्चाओं के माध्यम से प्रमुख फसलों की विविधता, स्थिति, विशिष्ट गुण, व्यावसायिक संभावनाएं एवं उनकी खेती में आ रही बाधाओं की जानकारी एकत्र की गई।

कृषक सहभागी चयन द्वारा लाल धान, गोल मंडुआ, चपटा भट्ट, काला-भूरा गहत, रामदाना जैसी किस्में अपने उच्च मांग तथा संभावनाओं के कारण व्यावसायिक खेती एवं मूल्य संवर्धन के लिए उपयुक्त पाई गईं। इन पारंपरिक किस्मों को दीर्घकालिक संरक्षण एवं किसानों को निरंतर उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए रमणा न्याय पंचायत, अल्मोड़ा एवं डोनी, टिहरी में स्थानीय बीज बैंकों की स्थापना और सुदृढ़ीकरण किया गया, ताकि भविष्य में चयनित किस्मों के शुद्ध बीज संग्रहित, संरक्षित एवं आवश्यकतानुसार कृषकों को वितरित किए जा सकें ।

बीज बैंक न केवल किस्मों के संरक्षण में सहायक सिद्ध हुए, बल्कि उन्होंने किसानों को बाहरी बीज स्रोतों पर निर्भरता कम करने तथा स्थानीय फसल किस्मों की निरंतर खेती को प्रोत्साहित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इन सामुदायिक बीज बैंकों द्वारा व्यापक स्तर पर उगाई जा रही धान कृषक किस्मों रामणा लाल धान, कवथुनी धान, बौराणी धान, दूध धान और सफेद धान एवं मंडुआ की दो किस्में गोल मंडुआ एवं झुमकिया मंडुआ को पंजीकरण हेतु पौधा किस्म एवं कृषक अधिकार संरक्षण प्राधिकरण, नई दिल्ली को भेजा गया है। इनमें से अब तक मंडुआ की दो कृषक किस्में गोल मंडुआ एवं झुमकिया मंडुआ तथा धान की दो किस्मों 'रामणा लाल धान' एवं 'बौराणी धान' पंजीकृत हो चुकी हैं एवं अन्य सभी पंजीकरण प्रक्रिया में हैं।

ये कृषक प्रजातियां पारंपरिक फसल प्रजातियों के संरक्षणकर्ता कृषक श्री भूपेन्द्र जोशी, ग्राम गल्ली बस्यूरा, जनपद अल्मोड़ा द्वारा गैरसरकारी संस्था लोक चेतना मंच के माध्यम से प्रस्तुत की गई थीं। पर्वतीय क्षेत्रों के अनुकूल गोल मंडुआ के बीजों का रंग गहरा भूरा है। गोल मंडुआ की बालियों का गहरा बैंगनी रंग, चौड़ी अंगुलियां एवं बीजों का गहरा भूरा रंग, अन्य तुलनीय प्रजातियों से भिन्न पाई गईं।

इसी प्रकार झुमकिया मंडुआ के बीजों का रंग तांबे जैसा भूरा एवं सतह खुरदरी है। इसकी बालियों में शाखन, बहुस्तरीय अंगुली व्यवस्था तथा अर्ध-सघन बनावट जैसी विशिष्टताएं अन्य तुलनीय किस्मों से स्पष्ट रूप से अलग पायी गयीं। उत्तराखण्ड की पारंपरिक धान प्रजातियों में रामणा लाल धान और बौराणी धान विशेष महत्व रखती हैं। जो लगभग 80-85 दिनों में फूलने और 110-115 दिनों में पकने वाली पारंपरिक कृषक प्रजातियां हैं। दोनों किस्में वर्षा आधारित खेती एवं उर्वर मृदा के अनुकूल हैं तथा झुलसा रोग से मध्यम प्रतिरोधिता प्रदर्शित करती हैं।

बौराणी धान का दाना सफेद रंग का, अपेक्षाकृत बड़ा (लंबाई 6.24 मि.मी., चौड़ाई 2.22 मि.मी., 100 दाना वजन 2.49 ग्राम) होता है, जबकि रामणा लाल धान का दाना हल्के लाल/भूरे रंग का (लंबाई 5.84 मि.मी., चौड़ाई 2.38 मि.मी., 100 दाना वजन 2.6 ग्राम) है।

पारम्परिक फसल प्रजातियों का संरक्षण

गोल मंडुआ

सामुदायिक बीज बैंक का योगदान

उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में बीज प्रणाली मुख्य रूप से अनौपचारिक है। किसान अपनी बीज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सामान्यत: अपनी फसल से ही अच्छे बीज बचाकर, आदान-प्रदान द्वारा या स्थानीय बाजारों से खरीदते हैं। कृषकों को पर्याप्त मात्रा में गुणवत्तायुक्त बीज की उपलब्धता एवं लुप्तप्राय स्थानीय किस्मों के बीजों का कृषकों के खेतों में ही संरक्षण तथा संवर्धन करने हेतु सामुदायिक बीज बैंक का सुदृढ़ीकरण किया गया। बीज बैंकों में प्रबंधन, यांत्रिक कटाई पश्चात प्रसंस्करण और भंडारण की व्यवस्था की गई। वर्तमान में गल्ली बस्यूरा, अल्मोड़ा के समुदायिक बीज बैंक में 30 से अधिक फसलों की लगभग 88 स्थानीय किस्मों एवं डोनी, टिहरी का सामुदायिक बीज बैंक भी लगभग 40 से अधिक स्थानीय फसल किस्मों का संरक्षण कर रहा है। इसके फलस्वरूप इनसे संबंधित गांवों में फसल एवं बीज विविधता तथा बीज उपलब्धता में सुधार हुआ। इसके साथ ही कृषकों के बीच सामाजिक एकता भी बढ़ी है। विशेष रूप से कोविड-19 महामारी के दौरान, जब उन्नत बीजों एवं कृषि संबंधित रसायन इत्यादि प्राप्त करना अत्यंत कठिन था, तब सामुदायिक बीज बैंकों ने किसानों की सहायता करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। सामुदायिक बीज बैंकों के सुदृढ़ीकरण ने किसानों को उनके द्वारा संरक्षित पारंपरिक फसल किस्मों पर उनके अधिकारों के प्रति जागरूक किया।

झुमकिया मंडुआ

रामणा लाल धान

सामुदायिक बीज बैंक में परंपरागत फसल विविधता के संरक्षण में अपने महत्वपूर्ण योगदान के लिए प्रगतिशील कृषक श्री भूपेन्द्र जोशी को प्रतिष्ठित 'पादप जीनोम संरक्षक कृषक सम्मान' एवं मान्यता हेतु पौधा किस्म एवं कृषक अधिकार संरक्षण प्राधिकरण, नई दिल्ली में आवेदन किया गया है, ताकि अन्य गावों के कृषक भी पारंपरिक फसलों के संरक्षण में अग्रसर हों।

वर्तमान में गैर-सरकारी संगठन लोक चेतना मंच, अल्मोड़ा एवं माउंट वैली डेवलपमेंट एसोसिएशन, टिहरी से प्राप्त 30 पारंपरिक किस्मों का भिन्नता, एकरूपता एवं स्थिरता का शुरुआती परीक्षण हेतु मूल्यांकन भाकृअनुप-विपकृअनु संस्थान, अल्मोड़ा में किया जा रहा है, ताकि भविष्य में इन्हें पादप किस्म एवं कृषक अधिकार संरक्षण प्राधिकरण में पंजीकरण हेतु प्रस्तुत किया जा सके।

बौराणी धान

पर्वतीय क्षेत्रों की पारंपरिक फसलों की मूल्य श्रृंखलाएं दुर्गमता, आवश्यक सेवाओं की कमी, मध्यस्थों की अधिकता, जागरूकता की कमी आदि कारणों से प्रभावित हैं। अतः कृषकों को कृषक उत्पादक संघ द्वारा संगठित कर, स्थानीय फसलों के उत्पादन को बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित किया गया एवं साथ ही पैकेजिंग, प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन की सुविधाएं प्रदान की गईं। भाकृअनुप-विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा, गैर सरकारी संगठन लोक चेतना मंच, रानीखेत, और माउंट वैली डेवलपमेंट एसोसिएशन, डोनी, टिहरी की सक्रिय भूमिका एवं प्रयासों द्वारा स्थानीय फसलों एवं उनकी किस्मों की मूल्य श्रृंखला को मजबूत करने के प्रयास किये गए।

वर्तमान में 'ग्रामीण हाट' तथा 'उत्तरांजली' ब्रांड के अंतर्गत सभी पारंपरिक फसलों जैसे धान, काला भट्ट, काला गहत, मंडुआ, झुंगरा, चुआ आदि से निर्मित उत्पादों का विपणन किया जा रहा है। पारंपरिक फसलों के इस व्यावसायीकरण में पादप किस्म एवं कृषक अधिकार संरक्षण प्राधिकरण, नई दिल्ली द्वारा संरक्षित पारंपरिक प्रजातियां जैसे गोल मंडुआ, झुमकिया मंडुआ, रामणा लाल धान एवं बौराणी धान के साथ-साथ अन्य कृषक प्रजातियां जैसे-धान की रामणा लाल धान, दूध धान, बौरानी धान सफेद धान, कावथुनी धान भी शामिल हैं। पारंपरिक फसल आधारित उत्पादों के विपणन को बढ़ावा देने के लिए, लोक चेतना मंच द्वारा कृषक उत्पादक संघ 'रानीखेत स्वायत सहकारिता समिति' की स्थापना की गई।

सारणी: पारंपरिक कृषक किस्मों के प्रसंस्करित उत्पादों के विपणन से अर्जित आय

वर्ष	कुल आय (लाख रुपये)	
	लोक चेतना मंच, रानीखेत, अल्मोड़ा (ग्रामीण हाट)	माउंट वैली डेवलपमेंट एसोसिएशन, डोनी, टिहरी (उत्तरांजली)
2020-21	28.20	13.00
2021-22	28.64	15.00
2022-23	35.78	20.00
2023-24	38.00	24.80
2024-25	43.00	18. 66
कुल	173.62	72.8

इन संस्थाओं ने किसान स्वसहायता समूहों (37 समूह) को उनके स्थानीय उत्पादों के विपणन के लिए सहायता प्रदान की। मूल्य श्रृंखला के सभी चरणों (उत्पादन, प्रसंस्करण, पैकेजिंग और विपणन) में सक्रिय योगदान करते हुए, लोक चेतना मंच, अल्मोड़ा एवं माउंट वैली डेवलपमेंट एसोसिएशन, डोनी, टिहरी द्वारा वर्ष 2020-25 के दौरान अर्जित की गयी आय का विवरण सारणी में दर्शाया गया है।

कृषक उत्पादक संघ के अंतर्गत पारंपरिक कृषक किस्मों के प्रसंस्करित स्थानीय उत्पादों के विपणन द्वारा अर्जित लाभ को शेयर धारक किसानों को दिया जाता है। इस प्रकार कृषक प्रजातियों के संरक्षण, स्थानीय बीज प्रणालियों के सशक्तिकरण, मूल्य श्रृंखला तथा प्रसंस्करण के विकास द्वारा कृषकों की आजीविका को सुदृढ़ करने के प्रयास किये गए। यह प्रयास पर्वतीय क्षेत्रों में पारंपरिक फसल किस्मों के संरक्षण, संवर्धन और व्यावसायीकरण का एक सफल मॉडल प्रस्तुत करता है, जिसे व्यापक स्तर पर अपनाकर किसानों की आय, पोषण सुरक्षा एवं कृषक अधिकार संरक्षण को और अधिक सुदृढ़ किया जा सकता है।

यू.एन.ई.पी.-जी.ई.एफ. द्वारा पोषित परियोजना 'कृषि जैव विविधता के संरक्षण एवं उपयोग द्वारा कृषि क्षेत्र की मुख्य धारा में लाना, बदलती जलवायु से बचाना एवं पारिस्थितिकी सेवाएं सुनिश्चित करना' के अंतर्गत उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में पारंपरिक फसलों और कृषक प्रजातियों के संरक्षण, संवर्धन और व्यावसायीकरण की पहल ने स्थानीय किसानों की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा, आय वृद्धि और सामाजिक सशक्तिकरण को सुदृढ़ किया है। पादप किस्म एवं कृषक अधिकार संरक्षण प्राधिकरण, नई दिल्ली द्वारा पंजीकृत किस्में जैसे-गोल मंडुआ, झुमकिया मंडुआ, रामणा लाल धान तथा बौराणी धान साथ ही अन्य पंजीकरणाधीन कृषक प्रजातियां किसानों की बौद्धिक संपदा अधिकारों की रक्षा के साथ-साथ व्यावसायिक खेती के अवसर भी प्रदान कर रही हैं।

सामुदायिक बीज बैंक

उत्तराखंड में भाकृअनुप-विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा, गैर सरकारी संगठनों एवं कृषक उत्पादक संघों के सहयोग द्वारा स्थानीय ब्रांड 'ग्रामीण हाट' तथा 'उत्तरांजली' के अंतर्गत पारंपरिक फसल किस्मों के प्रसंस्करित उत्पादों का सफल विपणन किया जा रहा है। इस प्रकार, वैज्ञानिक एवं सामुदायिक प्रयासों तथा बाजार-उन्मुख दृष्टिकोण के सम्मिलित प्रभाव से पर्वतीय क्षेत्रों में पारंपरिक फसल किस्म विविधता संरक्षण द्वारा कृषकों की आय में वृद्धि के अवसर सृजित हुए हैं।

पर्वतीय क्षेत्रों में इसी तरह के प्रयासों को बड़े स्तर पर करने की अत्यंत आवश्यकता है, ताकि कृषकों को उनकी अपनी प्रजातियों पर अधिकार प्राप्त हों एवं वे अपनी आजीविका सुनिश्चित कर सकें। ■

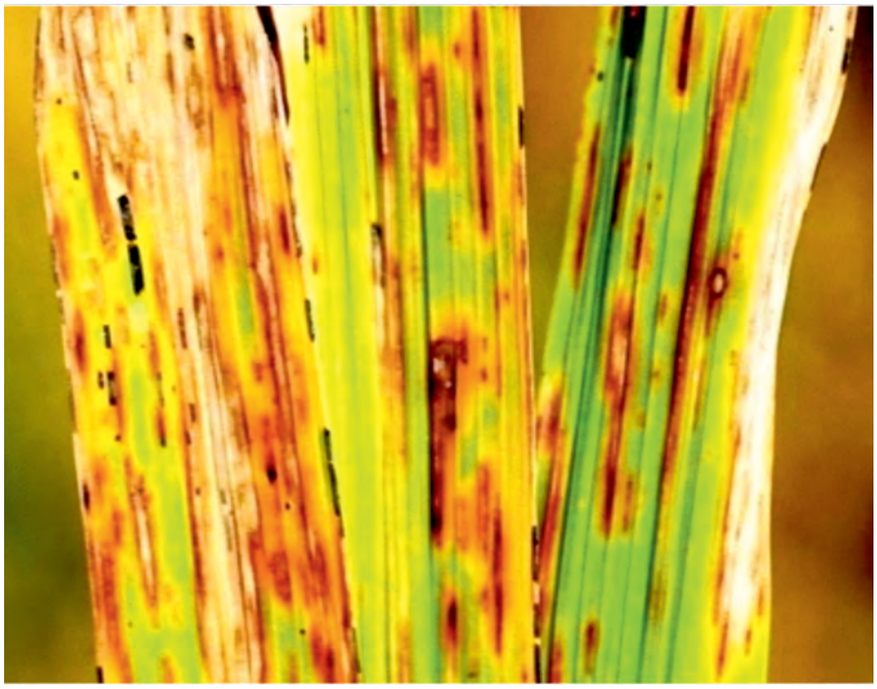

फसलोत्पादन एवं मानव पोषण में जिंक की भूमिका

शबनम[1], राजीव कुमार[1] और **नेहा चौहान[2]**

"सूक्ष्म पोषक तत्वों में जिंक को भारत में मुख्य पोषक तत्वों-नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश, सल्फर, कैल्शियम और मैग्नीशियम के बाद पांचवां सबसे महत्वपूर्ण पोषक तत्व माना जाता है। जिंक पौधों के साथ-साथ मनुष्य और पशुओं के लिए भी अत्यावश्यक है, जो पौधों की उपज तथा चारे का उपभोग करते हैं। मृदा में जिंक की कमी गंभीर पोषण संबंधी समस्याएं उत्पन्न करती है। मानव को आवश्यक पोषक तत्वों का बड़ा भाग मृदा के माध्यम से पौधों के खाद्य हिस्सों में पहुंचता है। पौधों में जिंक की कम मात्रा मृदा में इसकी कमी का संकेत देती है। भारतीय मृदा में जिंक की 0.60 मि.ग्रा./कि.ग्रा. की क्रांतिक रेखा निर्धारित की गई है। वहीं, पौधों की अच्छी वृद्धि के लिए पौधे में 20 मि.ग्रा./कि.ग्रा. जिंक का स्तर उपयुक्त पाया गया है। जिंकहीन मृदा में फसल लगाने से पौधों में इस तत्व की गंभीर कमी हो जाती है। इससे उपज एवं पोषण गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अनुमान है कि विश्व की लगभग 20 प्रतिशत मानव आबादी जिंक की कमी से प्रभावित है। एफएओ के अनुसार, भारतीय आहार में जिंक की कमी का जोखिम 30 प्रतिशत तक बढ़ गया है। फसलों में जिंक की मात्रा को आनुवंशिक सुधार, जैव-सुदृढ़ीकरण तथा कृषि प्रबंधन तकनीकों के माध्यम से बढ़ाकर राष्ट्रीय स्तर पर मानव पोषण में सुधार किया जा सकता है।"

आहार एवं खाद्य उत्पादों में जिंक महत्वपूर्ण तत्व है। जिंक 300 से अधिक एंजाइमों का सहकारक है और यह पाचन, चयापचय, डीएनए संश्लेषण, कोशिका विभाजन तथा प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

यह टी-कोशिकाओं की सक्रियता बढ़ाकर शरीर को संक्रमण से सुरक्षा प्रदान करता है। तंत्रिका संप्रेषण में भाग लेकर मस्तिष्क के कार्यों को संतुलित रखने में भी यह सहायक है, जिससे अवसाद और चिंता को कम करने में मदद मिल सकती है।

[1]बागवानी एवं औद्यानिकी महाविद्यालय, थुनाग स्थित गोहर (गुडाहरी), डा. यशवंत सिंह परमार बागवानी एवं औद्यानिकी विश्वविद्यालय, सोलन (हिमाचल प्रदेश); [2]कृषि विज्ञान केंद्र, मंडी स्थित सुंदरनगर (हिमाचल प्रदेश)

पुरुषों में जिंक शुक्राणु उत्पादन, जनन क्षमता और टेस्टोस्टेरोन के स्तर को बनाए रखने में सहायक होता है, जबकि महिलाओं में यह गर्भावस्था के दौरान भ्रूण के स्वस्थ विकास, प्रोटीन संश्लेषण और कोशिकीय वृद्धि में योगदान देता है। बच्चों और किशोरों के शारीरिक तथा मानसिक विकास, स्मरण क्षमता और रोग-प्रतिरोधक तंत्र की परिपक्वता के लिए भी जिंक आवश्यक है। आयु, लिंग और शारीरिक अवस्था के आधार पर इसकी दैनिक आवश्यकता अलग-अलग होती है। इसमें औसत आहार मानकों के अनुसार शिशुओं के लिए 3-5 मि.ग्रा., बच्चों के लिए लगभग 10 मि.ग्रा., पुरुषों के लिए 12-15 मि.ग्रा., महिलाओं के लिए लगभग 12 मि.ग्रा. और स्तनपान करवाने वाली महिलाओं के लिए 16-19 मि.ग्रा. जिंक प्रतिदिन अनुशंसित है।

भारत में जिंक अल्पपोषण एक बड़ी पोषण चुनौती बन चुका है, जहां 1-4 वर्ष के लगभग 19 प्रतिशत बच्चों तथा 10-19 वर्ष की 28 प्रतिशत लड़कियों और 35 प्रतिशत लड़कों में जिंक की कमी पाई गई है।

धान

धान में जिंक की कमी के लक्षण सामान्यत: रोपाई के 2 से 4 हफ्ते बाद दिखाई देते हैं। पत्तियों पर कत्थई या कांस्य रंग के धब्बे उभरते हैं, जो धीरे-धीरे आकार में बढ़कर पूरे पत्रफलक में फैल जाते हैं। इसके बाद में लगभग सभी पत्तियों पर कांस्य चित्तियां बनने लगती हैं। इस दशा को 'खैरा रोग' कहा जाता है, जो जिंक की कमी से होने वाला प्रमुख रोग लक्षण है।

जिंक की अत्यधिक कमी होने पर

धान

पौधों में कल्लों की संख्या कम हो जाती है और जड़ों की वृद्धि रुक जाती है। बालियों में निष्फलता, बांझपन या दानों का अधूरा विकास होने लगता है। इससे दाना भरण और पोषक आपूर्ति प्रभावित होती है और अंतत: उत्पादन में कमी आती है।

गेहूं

गेहूं में जिंक की कमी के लक्षण केवल अत्यधिक कमी की दशा में दिखाई देते हैं। जिंक पौधों में गतिशील होता है। अत: कमी

गेहूं

के लक्षण सर्वप्रथम मध्य पत्तियों पर दिखाई देते हैं। पत्तियों के अग्रक एवं आधार हरे रहते हैं, जबकि मध्य भाग में मटमैले हरे रंग के धब्बे बनते हैं, जो बाद में गहरे भूरे रंग के धब्बों में परिवर्तित हो जाते हैं। जिंक की कमी की तीव्रता बढ़ने पर धब्बे सभी पत्तियों पर फैल जाते हैं और पत्तियां गिर जाती हैं। जिंक की कमी के कारण कल्ले कम बनते हैं एवं पौधे की बढ़वार कम हो जाती है।

गोभी

इस फसल में जिंक की कमी से पौधों

गोभी

की बढ़वार रुक जाती है। पत्तियों का आकार छोटा हो जाता है। मध्य पत्तियों में हरिमाहीनता और मुड़ी हुई दिखाई देती हैं तथा पौधे की पत्तियों की शिराएं मोटी और उभरी हुई दिखती हैं। मध्य एवं नई पत्तियों में हरिमाहीनता आती है, जो बाद में धब्बों में बदल जाती है। नयी पत्तियों का त्रिफलक अन्दर की तरफ मुड़ा हुआ 'प्याले' के आकार का दिखाई पड़ता है। पत्तियां मोटी एवं नाजुक तथा आकार में छोटी एवं अव्यवस्थित हो जाती हैं।

सिट्रस

जिंक की कमी अम्लीय और क्षारीय दोनों प्रकार की मृदा में सिट्रस को प्रभावित करती है, परंतु क्षारीय मृदा में यह अधिक गंभीर रूप ले लेती है। फॉस्फेट उर्वरकों का अत्यधिक उपयोग भी जिंक की कमी को बढ़ाता है। इस कमी से प्रभावित सिट्रस की पत्तियां छोटी, संकरी और छोटे तनों पर गुच्छेदार रूप में दिखाई देने लगती हैं। पत्तियों की मुख्य शिराओं के बीच सफेद तथा पीले धब्बे विकसित होते हैं। टहनियां धीरे-धीरे सूखने लगती हैं और उनके स्थान पर अनेक नई, किंतु कमजोर टहनियां निकल आती हैं, जिससे पेड़ झाड़ीदार तथा बौना दिखाई देने लगता है।

मृदा में जिंक को प्रभावित करने वाले कारक

जिंक की घुलनशीलता अत्यधिक रूप से मृदा के पी-एच मान पर निर्भर करती है एवं पी-एच में प्रति इकाई की वृद्धि होने से जिंक की उपलब्धता 100 गुना तक कम हो जाती है। यह मृदा की दशा द्वारा प्रभावित होती है, जो जिंक की घुलनशीलता निर्धारित करती है। मृदा में उपस्थित पदार्थों जैसे-हाइड्रो ऑक्साइड, कार्बोनेट, कार्बनिक पदार्थों द्वारा जिंक का अवशोषण का घटना मृदा के पी-एच के बढ़ने से संबंधित होता है।

मृदा में उपलब्ध जैविक कार्बन

मृदा में जैविक कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में वृद्धि से जिंक की मात्रा में बढ़ोतरी होती है। हालांकि, अत्यधिक कार्बनिक पदार्थ जिंक को स्थिर कर सकता है, जिससे पौधों में जिंक की कमी हो सकती है।

कैल्शियम कार्बोनेट

कैल्शियम कार्बोनेट मृदा में जस्ते की उपलब्धता को तीन तरीकों से कम करता है। पहला-मृदा का पी-एच मान बढ़ाकर; दूसरा-जस्ते का सीधे अवशोषण करके और तीसरा-अघुलनशील कैल्शियम जिंकेट का निर्माण करके। इन सभी कारणों से अधिक कैल्शियम वाली मृदा में जस्ते की कमी बढ़ जाती है।

सेब

सेब में जिंक की कमी के लक्षण सामान्यत: बसंत ऋतु में दिखाई देते हैं। सबसे पहले नई पत्तियां हरिमाहीन होने लगती हैं और इनकी शिराएं मध्य भाग से पीली पड़ जाती हैं। तने और शाखाओं पर आंखों (कलिका बिंदुओं) का प्राकृतिक विकास प्रभावित होता है और कई बार आंखों का विकास नहीं हो पाता। शाखाओं के सिरों पर पत्तियां अत्यधिक छोटी, संकरी और मुड़ी हुई दिखाई देती हैं, जिससे पौधे की प्रकाश ग्रहण क्षमता घटती है। इस कमी से पुष्प और फल की संख्या घट जाती है तथा फल छोटे एवं विकृत हो जाते हैं, जिससे उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

मृदा की बनावट एवं कण संरचना

मृदा की बनावट और उसमें उपस्थित कणों का प्रकार मृदा में जिंक की उपलब्धता पर असर डालते हैं। रेतीली मृदा में जल धारण क्षमता कम होने के कारण जिंक का निस्तारण (लीचिंग) अधिक होता है, जिससे इसकी उपलब्धता कम हो जाती है। हल्की बनावट की मृदा में जिंक की कमी की आशंका अधिक होती है। जबकि दोमट और चिकनी मृदा में जिंक को धारण करने की क्षमता अपेक्षाकृत अधिक होती है।

अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रभाव

मृदा में जिंक का अवशोषण आयरन, मैंग्नीज और तांबे की अधिकता से प्रभावित हो सकता है। इन पोषक तत्वों के साथ आपसी प्रतिस्पर्धा के कारण मृदा में जिंक की कमी उत्पन्न हो सकती है।

मृदा में नमी की भूमिका

अत्यधिक शुष्क मृदा में जिंक की घुलनशीलता कम हो जाती है। जलभराव वाली मृदा में जिंक, आयरन और मैंग्नीज के साथ मिलकर अवक्षिप्त रूप बना लेता है, जिससे इसकी उपलब्धता घट जाती है। मृदा में संतुलित नमी स्तर बनाए रखना जिंक की उपलब्धता के लिए अत्यंत आवश्यक माना गया है।

उर्वरक एवं प्रबंधन तकनीक

नाइट्रोजन उर्वरकों का अत्यधिक प्रयोग जिंक की उपलब्धता को कम कर सकता है। जिंक की कमी की पूर्ति के लिए जिंक युक्त उर्वरकों मुख्यत: जिंक सल्फेट का प्रयोग किया जाता है। जैविक खाद, जैसे गोबर खाद, वर्मीकम्पोस्ट और हरी खाद, मृदा में जिंक की उपलब्धता बढ़ाने में सहायक माने गए हैं।

जिंक के विभिन्न स्रोत

जिंक की कमी के प्रबंधन के लिए जिंक सल्फेट (21 प्रतिशत जिंक), जिंक चूर्ण (99 प्रतिशत), जिंक ऑक्साइड (67.80 प्रतिशत जिंक), जिंक कार्बोनेट (65 प्रतिशत जिंक), जिंक ईडीटीए (12 प्रतिशत जिंक), जिंकेटड यूरिया (2 प्रतिशत जिंक) तथा जिंक क्लोराइड (45 प्रतिशत जिंक) उपयोग में लाए जाते हैं। व्यापक स्तर पर मृदा में जिंक की कमी को दूर करने में जिंक सल्फेट का प्रयोग सभी मृदा और फसलों में सबसे उपयुक्त पाया गया है।

जिंक अनुप्रयोग

फसलों में जिंक का उपयोग मृदा की स्थिति, फसल की आवश्यकता और कमी की गंभीरता के आधार पर उपयुक्त विधि या कई विधियों के संयोजन से किया जा सकता है।

फसलोत्पादन में जिंक की भूमिका

पौधों के विकास के लिए 17 पोषक तत्व अनिवार्य माने गए हैं। इनमें कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन वातावरण से प्राप्त होते हैं तथा पौधे के कुल शरीर का 90-95 प्रतिशत भाग बनाते हैं। नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश मिलकर पौधे का 3-5 प्रतिशत भाग बनाते हैं, जबकि सल्फर, मैग्नीशियम, कैल्शियम, जिंक, आयरन, मैंग्नीज, कॉपर, बोरॉन, क्लोरीन और निकल सूक्ष्म पोषक तत्व हैं, जिनकी आवश्यकता अत्यंत कम मात्रा (लगभग 100 मि.ग्रा./कि.ग्रा.) में होने पर भी पौधों के लिए उतनी ही अनिवार्य होती है। जिंक पौधों में वृद्धि हार्मोन 'ऑक्सिन' के निर्माण, कोशिका विभाजन, कलिका विकास, पुष्पण तथा पत्तियों, तनों और फलों की वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके साथ ही, जिंक फलों में कैल्शियम की आपूर्ति भी बढ़ाता है, जिसके परिणामस्वरूप फसल की गुणवत्ता में सुधार होता है। जिंक की कमी से पत्तियां छोटी और पतली होकर 'लिटिल लीफ रोसेट' जैसे लक्षण प्रकट करती हैं, जिससे फसल उत्पादन और गुणवत्ता दोनों घटते हैं। विश्वभर में जिंक की कमी व्यापक है और नाइट्रोजन के बाद जिंक की कमी को सिट्रस का सबसे व्यापक पोषण संबंधी रोग माना जाता है। कुछ संवेदनशील फसलें, जैसे धान विशेष रूप से प्रभावित हो सकती हैं। उच्च पी-एच वाली, अधिक कैल्शियमयुक्त, रेतीली तथा अत्यधिक निस्तारित मृदा में इसकी उपलब्धता कम हो जाती है, जिससे फसलों में जिंक की कमी बढ़ जाती है।

मृदा में उपयोग

जिंक सल्फेट सबसे अधिक प्रयुक्त जिंक उर्वरक है। इसे 5-25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से मृदा में मिलाया जाता है। फसल की बुआई से पहले इसे मृदा में मिलाने से जिंक लंबे समय तक उपलब्ध रहता है।

पत्तियों पर छिड़काव

0.5-2 प्रतिशत जिंक सल्फेट घोल का पत्तों पर छिड़काव किया जाता है। यह विधि तब अधिक उपयोगी होती है, जब मृदा में जिंक की उपलब्धता कम हो। इसका प्रभाव तेजी से दिखता है, परंतु इसे बार-बार छिड़कने की आवश्यकता होती है।

बीज उपचार

बीजों पर जिंक का लेप लगाया जाता है या बीजों को जिंक घोल में भिगोया जाता है। इस प्रक्रिया में जिंक चीलेट्स का उपयोग किया जाता है, जिससे अंकुरण और शुरुआती बढ़वार में सुधार होता है तथा प्रारंभिक अवस्था में फसल को जिंक अधिक आसानी से उपलब्ध हो पाता है।

पौध की जड़ों को डुबोना

यह विधि नर्सरी में उपयोगी मानी जाती है, जिससे पौध की प्रारंभिक बढ़वार बेहतर होती है। गोभी जैसी फसलों की पौध को रोपाई से पहले जिंक घोल में जड़ों सहित डुबोकर उपचारित किया जाता है।

जिंक मिश्रित उर्वरक

जिंक को एनपीके उर्वरकों में मिलाया जाता है, ताकि इसे फसल के पूरे जीवन चक्र में उपलब्ध करवाया जा सके। यह विधि उर्वरकों की उपयोग दक्षता बढ़ाने में सहायक मानी गई है।

जिंक लेपित यूरिया

यूरिया के कणों पर जिंक का लेप किया जाता है, जिससे पौधों को जिंक की निरंतर आपूर्ति मिलती रहती है। इसके साथ ही नाइट्रोजन की उपयोग दक्षता भी बेहतर होती है।

नैनो जिंक उर्वरक

हाल ही में विकसित नैनो-जिंक उर्वरक जिंक की उपलब्धता को बढ़ाते हैं। इससे उर्वरक की दक्षता बढ़ती है और पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव भी कम पड़ता है। ■

जिंक की कमी के सामान्य लक्षण

जिंक की कमी से नई पत्तियों में अंत:शिरा हरिमाहीनता दिखाई देती है, जबकि शिराएं हरी रहती हैं। पत्तियां छोटी, चित्तीदार तथा किनारों से अंदर की ओर मुड़ी हुई हो जाती हैं और पर्व (इंटरनोड) छोटा पड़ जाता है। कभी-कभी जिंक की कमी के कोई स्पष्ट दृश्य/लक्षण नहीं दिखते, जिसे 'छुपी हुई भूख' कहा जाता है। इस अवस्था में जिंक की पूर्ति न करने पर उपज गंभीर रूप से घट जाती है। जिंक की कमी से उत्पन्न हरिमाहीनता, आयरन की कमी से मिलती-जुलती हो सकती है। अंतर यह है कि जिंक की कमी में पत्ती के आधार पर सफेद या हल्के धब्बे दिखाई दे सकते हैं, जबकि आयरन की कमी में प्राय: पूरी पत्ती अंत:शिरा हरिमाहीनता दर्शाती है और आधार पर सफेद धब्बे सामान्यत: नहीं बनते। फसलों में जिंक की कमी का निदान मुख्यत: मृदा परीक्षण, ऊतक परीक्षण तथा पौधों के दृश्य लक्षणों के आधार पर किया जाता है।

स्क्रब टाइफस रोग से बचाव

हिमानी शर्मा[1] और **नवल किशोर सिंह**[2]

"स्क्रब टाइफस एक उभरता हुआ संक्रामक (जुनोटिक) रोग है, जो ओरिएंटिया त्सुत्सुगामुषी नामक बैक्टीरिया के कारण होता है। किसानों में स्क्रब टाइफस का प्रसार मुख्यत: चिगर्स (सूक्ष्म माइट्स) के संपर्क में आने से होता है, जो खेतों एवं झाड़ियों में पनपते हैं। विश्व स्तर पर लगभग एक अरब लोग इस रोग के जोखिम में हैं तथा प्रतिवर्ष लगभग दस लाख लोग इससे संक्रमित होते हैं। स्क्रब टाइफस के परिणामस्वरूप शरीर के कई महत्वपूर्ण अंग गंभीर रूप से प्रभावित होकर कार्य करना बंद कर सकते हैं। भारत में प्रतिवर्ष इस रोग के अनेक मामले सामने आते हैं। यह भी पाया गया है कि समय पर उचित उपचार न मिलने पर इससे मृत्यु दर अधिक हो सकती है। इस लेख का मुख्य उद्देश्य स्क्रब टाइफस रोग के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना है, जिसमें इसके कारण, महामारी विज्ञान, निदान एवं बचाव से संबंधित पहलुओं का उल्लेख किया गया है। इस रोग के प्रभावी प्रबंधन के लिए इसकी रोकथाम, प्रारंभिक पहचान तथा समय पर उपचार जैसे विभिन्न पहलुओं को समझना अत्यंत आवश्यक है।"

वर्तमान समय में स्क्रब टाइफस रोग एक गंभीर समस्या के रूप में उभर रहा है। इसे बुश टाइफस अथवा त्सुत्सुगामुषी रोग के नाम से भी जाना जाता है, एक तीव्र ज्वरजन्य रोग है। यह रोग रिकेट्सिया परिवार के जीवाणु ओरिएंटिया त्सुत्सुगामुषी के कारण होता है, जिसे पहले रिकेट्सिया त्सुत्सुगामुषी के नाम से जाना जाता था। स्क्रब टाइफस रोग इस जीवाणु से संक्रमित लेप्टोट्रोम्बिडियम प्रजाति के माइट्स के लार्वा (चिगर्स) के काटने से मनुष्यों में फैलता है। किसानों में स्क्रब टाइफस का प्रसार मुख्यत: इन चिगर्स के संपर्क में आने से होता है, जो खेतों एवं झाड़ियों में पनपते हैं।

स्क्रब टाइफस एक पशुजन्य (जूनोटिक) रोग है, जो मुख्य रूप से एशिया प्रशांत क्षेत्र के देशों के ग्रामीण एवं वन क्षेत्रों में पाया जाता है। एक अनुमान के अनुसार, प्रतिवर्ष स्क्रब टाइफस के लगभग दस लाख मामले दर्ज किए जाते हैं।

मानव व्यवहार में परिवर्तन तथा जलवायु परिवर्तन इस रोग के प्रसार को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक हैं। अनुसंधानों में यह पाया गया है कि विश्व के जिन क्षेत्रों में बीटा-लैक्टम एंटीबायोटिक का अत्यधिक उपयोग हुआ है तथा जहां शहरीकरण के कारण ग्रामीण क्षेत्रों का तीव्र विस्तार हुआ है, वहां स्क्रब टाइफस के मामलों में वृद्धि देखी गई है। हाल के वर्षों में भारत में स्क्रब टाइफस का पुनरुत्थान हुआ है। इसमें उच्च रोगाणु क्षमता, बढ़ी हुई मृत्यु दर तथा तीव्र ज्वर जैसे गंभीर लक्षण सामने आए हैं।

ओरिएंटिया त्सुत्सुगामुषी का स्तनधारियों में संचरण मुख्यत: लेप्टोट्रोम्बिडियम प्रजाति के माइट्स के लार्वा अवस्था (चिगर्स) के माध्यम से होता है। ये माइट्स इस परजीवी जीवाणु के लिए प्राथमिक रिजर्वायर के रूप में कार्य करते हैं। चिगर्स सामान्यत: शरीर की पतली, कोमल अथवा झुर्रीदार त्वचा वाले भागों से खुराक लेते हैं, जिससे संक्रमण का जोखिम बढ़ जाता है।

यह देखा गया है कि चिगर्स मेजबान की त्वचा को सीधे नहीं छेदते, बल्कि बालों के रोम अथवा त्वचा के सूक्ष्म छिद्रों का उपयोग करते हैं। चिचड़ी मेजबान की त्वचा पर अपने आहार स्थल के चारों ओर लार का स्राव करती हैं। इससे ऊतक भंग होकर तरलीकृत हो जाता है और उसे चिगर्स द्वारा निगल लिया जाता है। ओरिएंटिया त्सुत्सुगामुषी चिचड़ी की लार ग्रंथियों में पाया जाता है।

चिचड़ी में ओरिएंटिया को बनाए रखने के लिए ट्रांसओवेरियन (अंडों के माध्यम से) तथा ट्रांसस्टेडियल (विभिन्न अवस्थाओं के बीच) संचरण प्रमुख तंत्र हैं। ये लार्वा सामान्यत: छोटे कृन्तकों (रोडेन्ट्स), विशेष रूप से जंगली चूहों को अपना आहार स्थल बनाते हैं।

आमतौर पर वर्षा ऋतु के दौरान संक्रमित क्षेत्रों जैसे खेतों एवं झाड़ियों में उपस्थित चिगर्स के संपर्क में आने से किसान अनजाने में संक्रमित हो जाते हैं। भारत में तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, जम्मू-कश्मीर, मेघालय, असोम, नगालैंड, पश्चिम बंगाल, बिहार, महाराष्ट्र एवं

स्क्रब टाइफस से त्वचा पर दाने

[1]विषय वस्तु विशेषज्ञ, बागवानी एवं वानिकी महाविद्यालय, थुनाग, डा वाई.एस. परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौणी-173230, सोलन (हिमाचल प्रदेश); [2]विषय वस्तु विशेषज्ञ, कृषि विज्ञान केन्द्र, (भाकृअनुप-वि.प.कृ.अनु. संस्थान), काफलीगैर-263628, बागेश्वर (उत्तराखण्ड)

रोग प्रसार

वर्तमान में यह रोग भारत के लगभग सभी राज्यों में पाया जाता है। दक्षिण भारत में तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक एवं केरल; उत्तरी भारत में हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड एवं जम्मू-कश्मीर; पूर्वोत्तर भारत में असोम, मेघालय, मणिपुर एवं नगालैंड; पूर्वी भारत में पश्चिम बंगाल एवं बिहार तथा पश्चिमी भारत में महाराष्ट्र, राजस्थान एवं गुजरात में इसके मामले सामने आए हैं। अनेक क्षेत्रों में इस रोग को किसानों के स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से कम आंका जाता है। इसके साथ ही, उचित जांच सुविधाओं एवं प्रयोगशालाओं की कमी तथा आम जनमानस में इस रोग के प्रति जागरूकता के अभाव के कारण इसका समय पर निदान एवं उपचार चुनौतीपूर्ण बना रहता है।

राजस्थान से स्क्रब टाइफस के बड़ी संख्या में मामले सामने आए हैं। भारत में स्क्रब टाइफस के अधिकांश रोगी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले पाए गए हैं।

लक्षण

लेप्टोट्रोम्बिडियम माइट्स सामान्यत: पहले से स्वस्थ एवं सक्रिय व्यक्तियों को संक्रमित करते हैं। संक्रमण के पश्चात यदि रोगी अनुपचारित रह जाए, तो यह रोग जानलेवा भी साबित हो सकता है। स्क्रब टाइफस का सबसे सामान्य लक्षण तेज बुखार है और यह 'अज्ञात मूल के बुखार' के प्रमुख कारणों में से एक माना जाता है। इसके अतिरिक्त, रोग की तीव्रता उप-नैदानिक अवस्था से लेकर बहु-अंग विफलता तक हो सकती है।

लक्षणों का देर से प्रकट होना, रोग निदान में विलंब तथा दवा प्रतिरोधक क्षमता का विकास इस रोग से होने वाली मृत्यु के प्रमुख कारक हैं। चिगर्स का काटना प्राय: दर्दरहित होता है और यह शरीर के किसी भी भाग पर हो सकता है, किंतु अधिकतर ऐसे स्थानों पर पाया जाता है, जिनकी जांच कठिन होती है, जैसे जननांग क्षेत्र या कांख (एक्सिला) के नीचे।

स्क्रब टाइफस से त्वचा पर घाव

चिचड़ी के काटने के स्थान पर एक ऊतकक्षयी घाव विकसित हो जाता है, जो स्क्रब टाइफस का विशिष्ट लक्षण है। घाव की शुरुआत एक छोटे पप्यूल के रूप में होती है, जो धीरे-धीरे आकार में बढ़ता है तथा केंद्रीय परिगलन से गुजरता है। अंतत: यह काली पपड़ी के साथ सिगरेट से जलने जैसे घाव का रूप ले लेता है, जिसके आसपास सामान्यत: सूजन नहीं होती। इसके साथ ही, क्षेत्रीय लिम्फ नोड्स बढ़े हुए और कोमल हो सकते हैं।

स्क्रब टाइफस की जटिलताएं सामान्यत: रोग के पहले सप्ताह के बाद विकसित होती हैं। पीलिया, गुर्दे की विफलता, निमोनिया, सेप्टिक शॉक, मायोकार्डिटिस तथा मेनिंगोएन्सेफेलाइटिस इस रोग से जुड़ी प्रमुख जटिलताएं हैं।

उपचार

स्क्रब टाइफस के प्रभावी प्रबंधन के लिए समय पर एवं सटीक निदान अत्यंत आवश्यक है। प्रारंभिक अवस्था में पहचान होने पर उपचार के अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं। प्रयोगशाला स्तर पर इस रोग के निदान हेतु मुख्यत: रक्त सीरम की जांच तथा विभिन्न आण्विक परीक्षण विधियों का उपयोग किया जाता है। इनमें लेटेक्स एग्लूटिनेशन, अप्रत्यक्ष हेमेग्लूटिनेशन, इम्यूनोपेरोक्सीडेज परख, एलिसा तथा पोलीमरेज चेन रिएक्शन (पीसीआर) प्रमुख हैं।

स्क्रब टाइफस की पहचान के लिए 'के-डाट ब्लट इम्यूनोएसे' आधारित डिपस्टिक परीक्षण भी विकसित किया गया है, जो अपेक्षाकृत सटीक, शीघ्र परिणाम देने वाला, उपयोग में सरल एवं कम लागत वाला है। विशेषकर ग्रामीण एवं संसाधन सीमित क्षेत्रों में, जहां यह रोग अधिक प्रचलित है, यह परीक्षण एक उपयोगी विकल्प माना जाता है। इसके अतिरिक्त, वील-फेलिक्स परीक्षण एक पारंपरिक सीरो-डायग्नोस्टिक स्क्रीलनग टेस्ट है, जिसका उपयोग उन परिस्थितियों में किया जाता है, जहां उन्नत जांच सुविधाएं उपलब्ध नहीं होती, यद्यपि इसकी विशिष्टता सीमित है।

निदान के दौरान स्क्रब टाइफस को मलेरिया, डेंगू, लेप्टोस्पायरोसिस, अन्य रिकेट्सियोसिस, मेनिंगोकोकल संक्रमण, टाइफाइड बुखार एवं एचआईवी जैसी अन्य तीव्र ज्वरजन्य रोगों से पृथक करना आवश्यक है।

स्क्रब टाइफस रोग का संक्रमण चक्र

बचाव

स्क्रब टाइफस से बचाव के लिए रोगवाहक नियंत्रण, सामुदायिक जागरूकता तथा व्यक्तिगत सुरक्षा उपाय अपनाना आवश्यक है। खेतों और झाड़ियों में चिगर्स की उपस्थिति का पता लगाने के लिए काले कार्डबोर्ड का प्रयोग किया जा सकता है, जिस पर ये कीट गुलाबी बिंदुओं के रूप में दिखाई देते हैं। संभावित संक्रमित क्षेत्रों में काम करते समय किसानों को जूते-मोजे, लंबी पतलून और पूरे बाजू के कपड़े पहनने चाहिए तथा त्वचा और कपड़ों पर चिचड़ी विकर्षक का उपयोग करना चाहिए। इसके अतिरिक्त डी.ई.ई.टी., डाइमेथाइल थैलेट या बेंजाइल बेंजोएट युक्त विकर्षक तथा पर्मेथ्रिन से उपचारित कपड़े संक्रमण के जोखिम को कम करते हैं। साथ ही, आसपास के क्षेत्रों में कृन्तकों का नियंत्रण और समन्वित निगरानी से इस रोग की रोकथाम में सहायता मिल सकती है।

उपचार की दृष्टि से, प्रारंभिक अवस्था में किया गया उपचार देर से आरंभ किए गए उपचार की तुलना में अधिक प्रभावी सिद्ध होता है। स्क्रब टाइफस के उपचार में डाक्सीसाइक्लिन, एजिथ्रोमाइसिन, क्लोरैम्फेनिकॉल तथा कुछ मामलों में फ्लोरोक्विनोलोन वर्ग की एंटीबायोटिक दवाएं प्रभावी पाई गई हैं। हल्के मामलों में मौखिक उपचार पर्याप्त होता है, जबकि गंभीर रोगियों में इंजेक्शन द्वारा उपचार की आवश्यकता पड़ सकती है। गर्भवती महिलाओं एवं छोटे बच्चों में कुछ एंटीबायोटिक दवाओं के उपयोग में सावधानी आवश्यक है। वर्तमान में स्क्रब टाइफस के लिए कोई प्रभावी टीका उपलब्ध नहीं है। ■

पौष्टिक चारा राईग्रास का सफल उत्पादन

ब्रजेश कुमार, मगन सिंह, संदीप कुमार और **राकेश कुमार**

"राईग्रास एक शीतकालीन उच्च गुणवत्ता वाली चारा फसल है। यह मुख्यत: दो प्रकार की होती है एकवर्षीय राईग्रास (लोलियम मल्टीफ्लोरम) तथा बहुवर्षीय राईग्रास (लोलियम पेरेने)। दोनों ही प्रकार पहाड़ी एवं समतल क्षेत्रों के लिए उपयुक्त हैं। बहुवर्षीय राईग्रास का उपयोग यूरोपीय देशों में मुख्य रूप से चारे के उद्देश्य से किया जाता है। राईग्रास को अन्य चारा फसलों जैसे बरसीम एवं सरसों के साथ मिश्रित रूप से भी उगाया जा सकता है। इसका चारा पशुओं में दूध उत्पादन बढ़ाने के साथ-साथ दूध की गुणवत्ता में भी सुधार करता है। राईग्रास के सेवन से दूध में वसा की मात्रा बढ़ती है। यह चारा मुलायम एवं अत्यधिक पाच्य होने के कारण पशुओं द्वारा चाव से खाया जाता है। राईग्रास के चारे में प्रोटीन की मात्रा लगभग 16-18 प्रतिशत तथा वसा की मात्रा लगभग 2.5 प्रतिशत पाई जाती है, जो इसे एक पोषक एवं गुणवत्तायुक्त चारा बनाती है।"

वार्षिक राईग्रास एक तीव्र वृद्धि करने वाली चारा फसल है, जिससे एक वर्ष में 4-6 कटाई की जा सकती हैं। इसके पौधों में चमकदार, कोमल पत्तियां होती हैं तथा पत्ती के आधार पर अलिन्द पाए जाते हैं, जो एक-दूसरे से चिपके रहते हैं।

राईग्रास के प्रत्येक पौधे से सामान्यत: 6-8 कल्ले निकलते हैं। पौधों की ऊंचाई लगभग 50-60 सें.मी. तक होती है। अप्रैल-मई में पौधों में बालियां निकल आती हैं। प्रत्येक बाली में लगभग 12-15 पुष्प होते हैं। यह गैर फलियों वाली घास वर्ग की चारा फसल है, जो रबी मौसम में हरा चारा उपलब्ध करवाती है। राईग्रास का चारा अत्यधिक पौष्टिक, स्वादिष्ट तथा आसानी से पचने योग्य होने के कारण पशुओं के लिए अत्यंत उपयोगी माना जाता है।

सारणी: विभिन्न फसलों के साथ राईग्रास के हरे चारे का उत्पादन

फसल संयोजन	उत्पादन (क्विं./है.)
राईग्रास (एकल फसल)	750
राईग्रास+बरसीम	600-700
राईग्रास+चाइनीज कैबेज/सरसों	600-750
राईग्रास+ल्युर्सन	600-800
राईग्रास+जई/जौ	450-600

क्षेत्रफल एवं उपयोग

भारत में वर्ष 2018-19 के दौरान राईग्रास लगभग 3 हजार हैक्टर क्षेत्रफल में उगाई गई। राईग्रास का उपयोग हरे चारे एवं साइलेज के रूप में किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, इसका प्रयोग चरागाह, टर्फ घास तथा मृदा संरक्षण जैसे

सस्य विज्ञान अनुभाग, राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

विभिन्न उद्देश्यों के लिए भी किया जा सकता है।

जलवायु एवं मृदा

राईग्रास एक शीतकालीन चारा फसल है। वार्षिक राईग्रास को लगभग सभी प्रकार की मृदा एवं तापमान परिस्थितियों में उगाया जा सकता है, परंतु हल्के तापमान एवं मृदा में पर्याप्त नमी होने पर इसका उत्पादन अधिक प्राप्त होता है। राईग्रास को छायादार स्थानों तथा चिकनी मृदा में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

अंकुरण के लिए उपयुक्त तापमान 18 डिग्री सेल्सियस से अधिक होना चाहिए, जबकि पौधों की वानस्पतिक वृद्धि के लिए 24-27 डिग्री सेल्सियस तापमान अनुकूल माना जाता है। राईग्रास के लिए मृदा का उपयुक्त पी-एच मान 6.5-7.0 होना चाहिए। वार्षिक राईग्रास का उपयोग प्रायः चरागाह के रूप में किया जाता है।

खेत की तैयारी

राईग्रास की अच्छी पैदावार के लिए खेत की अच्छी तरह तैयारी आवश्यक है। खेत की जुताई के समय गोबर की खाद जैसे कार्बनिक उर्वरकों को मृदा में मिलाना चाहिए, जिससे मृदा की उर्वराशक्ति में वृद्धि होती है। राईग्रास के बीज बहुत हल्के होते हैं, इसलिए खेत की तैयारी विशेष सावधानी से करनी चाहिए। खेत की ऊपरी सतह भुरभुरी होनी चाहिए, जिससे नमी धारण करने की क्षमता बढ़ जाती है।

बीज दर एवं बुआई का समय

राईग्रास की बुआई के लिए प्रति एकड़ 5-6 कि.ग्रा. बीज पर्याप्त होता है। बरसीम के साथ मिश्रित बुआई करने पर प्रति एकड़ 3.5-4.0 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होती है। प्रति हैक्टर बुआई के लिए 10-12 कि.ग्रा. बीज पर्याप्त होता है। समतल क्षेत्रों में राईग्रास की बुआई सितंबर से दिसंबर तक तथा पहाड़ी क्षेत्रों में मार्च से अप्रैल के बीच की जाती है।

चारा उत्पादन की उन्नत तकनीक

उर्वरक प्रबंधन

राईग्रास की फसल के लिए गोबर की खाद 4-5 टन प्रति एकड़ की दर से बुआई से पूर्व खेत की तैयारी के समय डालनी चाहिए। बुआई के समय नाइट्रोजन 25-30 कि.ग्रा./प्रति एकड़, फॉस्फोरस 15-16 कि.ग्रा./प्रति एकड़ तथा पोटाश 15-16 कि.ग्रा./प्रति एकड़ की मात्रा देना उपयुक्त रहता है। इसके बाद नाइट्रोजन 10-12 कि.ग्रा./प्रति एकड़ की दर से निश्चित समय अंतराल पर तथा प्रत्येक कटाई के बाद प्रयोग करनी चाहिए, जिससे हरे चारे की उपज एवं गुणवत्ता में वृद्धि होती है।

उन्नत प्रजातियां

मक्खन ग्रास, पंजाब राईग्रास-1, पंजाब राईग्रास-2 तथा ओएल-9 राईग्रास की प्रमुख उन्नत प्रजातियां हैं।

मक्खन ग्रास

मक्खन ग्रास अत्यधिक रसीली एवं सबसे अधिक स्वादिष्ट घास मानी जाती है। इस घास को पशुओं को खिलाने से दूध उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ दूध की गुणवत्ता में भी काफी सुधार होता है। अत्यधिक स्वादिष्ट होने के कारण पशु इसका अधिक मात्रा में सेवन करते हैं। इस किस्म की पाचन क्षमता अधिक होती है।

पंजाब राईग्रास-2

यह एक बहु कटाई एवं तेजी से बढ़ने वाली उन्नत किस्म है। इसकी पत्तियां लंबी एवं चौड़ी होती हैं तथा यह उच्च गुणवत्तायुक्त हरा चारा प्रदान करती है। इस किस्म से नवंबर से मई तक लगभग 6 कटाई ली जा सकती हैं। इसकी औसत पैदावार लगभग 327 क्विंटल प्रति एकड़ तक प्राप्त होती है।

पंजाब राईग्रास-1

यह भी तेजी से बढ़ने वाली किस्म है, जिसके तने एवं पत्तियां मुलायम होती हैं, जिन्हें पशु अधिक पसंद करते हैं। इसकी हरे चारे की

बीजाई की विधि

राईग्रास की बुआई 30-35 सें.मी. की दूरी पर पंक्तियों में की जा सकती है। इसके अतिरिक्त इसकी बुआई छिड़काव विधि से भी सफलतापूर्वक की जाती है। छिड़काव विधि में बीजों को भुरभुरी मृदा या बालू के साथ अच्छी तरह मिलाकर समान रूप से खेत में फैलाना चाहिए। बुआई करते समय यह विशेष ध्यान रखें कि बीजों को 1 इंच से अधिक गहराई में न ढका जाए। राईग्रास के बीज बहुत हल्के होते हैं। अधिक गहराई में चले जाने पर बीजों का अंकुरण प्रभावित होता है। बुआई के तुरंत बाद हल्की सिंचाई करना आवश्यक है। इससे बीज मृदा के सीधे संपर्क में आ जाते हैं और अंकुरण प्रतिशत बढ़ता है। राईग्रास अत्यधिक गर्मी एवं सूखे के प्रति अत्यंत संवेदनशील फसल है, इसलिए जिन क्षेत्रों में अधिक तापमान या लम्बे समय तक सूखे की स्थिति रहती है, वहां इसकी खेती उपयुक्त नहीं मानी जाती। बारहमासी राईग्रास की वृद्धि उन परिस्थितियों में अच्छी होती है, जहां इसकी जड़ें मृदा से अच्छी तरह जुड़ी रहती हैं और नमी उपलब्ध रहती है। राईग्रास को मिश्रित खेती के रूप में भी उगाया जा सकता है। इसे बरसीम, सरसों, ल्यूर्सन आदि चारा फसलों के साथ मिलाकर बोने से चारे की गुणवत्ता एवं उपलब्धता में वृद्धि होती है।

लाभ

- राईग्रास सर्दियों के मौसम में उच्च गुणवत्तायुक्त हरा चारा उपलब्ध करवाती है।
- इसका उपयोग मुख्य रूप से ठंडी जलवायु वाले क्षेत्रों में स्थायी लॉन एवं टर्फ विकसित करने के लिए किया जाता है।
- सर्दियों के मौसम में उन क्षेत्रों में भी राईग्रास उगाई जा सकती है, जहां अन्य घासें अपना हरा रंग खो चुकी होती हैं।
- राईग्रास सर्दियों में आसपास के वातावरण को हरा-भरा बनाए रखने में सहायक होती है।
- यह घास सूखे की स्थिति तथा मृदा के कम पी.एच. स्तर के प्रति अपेक्षाकृत अधिक सहनशील होती है।

दुग्ध उत्पादन बढ़ाने में सहायक राईग्रास

औसत उपज लगभग 325 क्विंटल प्रति एकड़ होती है। इस किस्म से भी नवंबर से मई तक 5-6 कटाई प्राप्त की जा सकती हैं।

खरपतवार नियंत्रण

राईग्रास की फसल में सामान्यत: खरपतवारनाशी दवाओं का प्रयोग नहीं किया जाता है, क्योंकि ये राईग्रास की फसल के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकती हैं। खरपतवार नियंत्रण के लिए समय पर निराई-गुड़ाई अथवा हाथ से खरपतवार निकालना अधिक सुरक्षित एवं प्रभावी उपाय माना जाता है।

सिंचाई

राईग्रास की फसल में पहली सिंचाई बुआई के तुरंत बाद की जाती है, जबकि दूसरी सिंचाई 5-7 दिनों के अंतराल पर करनी चाहिए। इसके बाद फसल एवं मौसम की स्थिति के अनुसार लगभग 10 दिनों के अंतराल पर या आवश्यकता अनुसार सिंचाई करते रहना चाहिए। यद्यपि राईग्रास को अपेक्षाकृत अधिक पानी की आवश्यकता होती है, फिर भी इसे मुख्यत: हरे चारे के उद्देश्य से उगाया जाता है। राईग्रास के चारे में जल की मात्रा अधिक तथा शुष्क पदार्थ की मात्रा कम होती है, जिससे यह पशुओं के लिए रसीला एवं सुपाच्य चारा सिद्ध होता है।

राईग्रास के उन्नत बीज

कटाई एवं उपज

राईग्रास की फसल हरे चारे के रूप में कटाई योग्य होने के लिए लगभग दो माह का समय लेती है। पहली कटाई सामान्यत: बुआई के 50-60 दिनों बाद या फसल की वृद्धि अवस्था के अनुसार की जाती है। इसके पश्चात 30-40 दिनों के अंतराल पर अन्य कटाइयां ली जा सकती हैं। राईग्रास से हरे चारे की औसत उपज लगभग 300-350 क्विंटल प्रति एकड़ तक प्राप्त होती है।

सिफारिशें

- राईग्रास को बहुत अधिक नीचे से नहीं काटना चाहिए। इसे लगभग 2 इंच की ऊंचाई से काटना उपयुक्त रहता है। इससे अधिक या कम ऊंचाई पर कटाई करने से आगे की कटाइयों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
- अगस्त तथा सितंबर के प्रथम सप्ताह में बुआई करने पर इसकी पत्तियों में फफूंद रोग का प्रकोप हो सकता है, जिससे चारे की गुणवत्ता में कमी आ जाती है।
- राईग्रास अत्यधिक ठंडी जलवायु के प्रति कम सहनशील होती है।

रागी में झुलसा रोग का समेकित प्रबंधन

संजीव कुमार[1], सी.एस. आजाद[1], राकेश कुमार[2], देवेंदर मण्डल[1] और बाल कृष्ण[1]

"रागी एक पोषक तत्वों से भरपूर पारंपरिक अनाज है, जो मुख्यत: भारत के दक्षिणी एवं मध्य राज्यों में सीमांत भूमि पर उगाया जाता है। यह श्री अन्न न केवल खाद्य सुरक्षा, बल्कि पोषण सुरक्षा में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हालांकि, रागी की उत्पादकता को झुलसा रोग से गंभीर चुनौती मिलती है, जो पत्तियों, गर्दन तथा बालियों पर आक्रमण कर 50-80 प्रतिशत तक उपज हानि पहुंचा सकता है। यह लेख रोगजनक की पहचान, लक्षण, अनुकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों, रोग चक्र तथा इससे होने वाले आर्थिक प्रभावों का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त, रोग प्रबंधन हेतु प्रतिरोधी किस्मों का चयन, पारंपरिक विधियां, रासायनिक नियंत्रण एवं जैविक उपायों पर आधारित एकीकृत रणनीतियां सुझाई गई हैं। प्रारंभिक पहचान एवं समन्वित हस्तक्षेप इस रोग के दुष्प्रभावों को न्यूनतम करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।"

रागी, जिसे फिंगर मिलेट या मडुआ भी कहा जाता है, भारत के पारंपरिक कृषि परिदृश्य में एक महत्वपूर्ण श्री अन्न फसल है। यह मुख्यत: कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, ओडिशा और महाराष्ट्र में वर्षा आधारित सीमांत भूमि पर उगाई जाती है तथा किसानों की आजीविका का एक प्रमुख आधार है। इसकी लोकप्रियता का कारण इसका जलवायु अनुकूल, उच्च पोषण मूल्य और कम लागत में उत्पादन की क्षमता है। रागी प्रोटीन, कैल्शियम, आयरन, फाइबर तथा आवश्यक अमीनो अम्ल से भरपूर होती है। इससे यह कुपोषण और एनीमिया जैसी समस्याओं के नियंत्रण में उपयोगी सिद्ध होती है। इसी कारण हाल के वर्षों में इसे 'सुपर फूड' का दर्जा भी प्राप्त हुआ है।

हालांकि, रागी की खेती को झुलसा रोग जैसी गंभीर समस्या का सामना करना पड़ता है, जो 50-80 प्रतिशत तक की उपज हानि का कारण बन सकती है। यह रोग न केवल फसल की उत्पादकता को प्रभावित करता है, बल्कि दानों की गुणवत्ता, चारे की उपयोगिता तथा किसानों की आय पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालता है। अत: इस रोग की समय पर पहचान, रोग चक्र की समुचित समझ तथा एकीकृत रोग प्रबंधन रणनीतियों को अपनाना अत्यंत आवश्यक है। यह रोग पाइरिकुलैरिया ग्रिजिया नामक कवक के संक्रमण से होता है, जिसे वर्तमान में वैज्ञानिक रूप से मैग्नापोर्थे ग्रिजिया के नाम से भी जाना जाता है।

[1]बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर-813210 (बिहार); [2]भाकृअनुप का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना-800014

रोग के लिए अनुकूल परिस्थितियां

झुलसा रोग का विकास विशेष पर्यावरणीय स्थितियों में तेजी से होता है। जब वायुमंडलीय आर्द्रता 90-100 प्रतिशत तक पहुंचती है। पत्तियों पर ओस या वर्षा के कारण लंबे समय तक नमी बनी रहती है, तो रोग अत्यधिक फैलता है। इसके अलावा, 20-30 डिग्री सेल्सियस के बीच का तापमान इस कवक के लिए अत्यंत अनुकूल माना जाता है। घना रोपण और अत्यधिक नाइट्रोजन उर्वरक का प्रयोग पौधों को कोमल बनाकर उन्हें संक्रमण के प्रति अधिक संवेदनशील बना देता है। यदि इन सभी कारकों की उपस्थिति में समय पर रोकथाम न की जाए, तो झुलसा रोग खेत में महामारी का रूप ले सकता है।

रोग चक्र

झुलसा रोग फैलाने वाला कवक मुख्य रूप से संक्रमित बीजों और खेत में पड़े पौध अवशेषों में जीवित रहता है, जो अगली फसल के लिए प्राथमिक स्रोत के रूप में कार्य करते हैं। रोगग्रस्त पत्तियों या अन्य भागों पर बने बीजाणु

रासायनिक नियंत्रण

झुलसा रोग के प्रभावी नियंत्रण में रासायनिक उपाय महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विशेषकर जब संक्रमण प्रारंभिक अवस्था में हो।

बीज उपचार

फसल की शुरुआत से ही सुरक्षा हेतु बीजों को कार्बेण्डाजिम (2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज) से उपचारित करना चाहिए। यह प्रारंभिक संक्रमण को रोकने में सहायक होता है।

फफूंदनाशी छिड़काव

जैसे ही पत्तियों पर रोग के लक्षण दिखाई दें, तुरंत ट्राइसाइक्लाजोल (0.6-1 ग्राम/लीटर पानी), प्रोपिकोनाजोल (0.1 प्रतिशत) या कार्बेण्डाजिम (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव करें। यदि मौसम रोग के अनुकूल हो तो छिड़काव को 10-12 दिनों के अंतराल पर दोहराया जा सकता है, विशेष रूप से फूल आने और दूधिया अवस्था में। इसके अतिरिक्त, एजॉक्सिस्ट्रोबिन या डाइफेनोकोनाजोल का उपयोग भी रोग के प्रसार को रोकने और फसल को सुरक्षा प्रदान करने में प्रभावी है।

हवा या वर्षा के छींटों के माध्यम से स्वस्थ पौधों तक पहुंचते हैं और उन्हें संक्रमित कर देते हैं। पत्तियों पर लंबे समय तक बनी नमी जैसे-सुबह की ओंस या हल्की वर्षा के बाद संक्रमण की तीव्रता को और बढ़ा देती है। यदि इन परिस्थितियों में समय पर नियंत्रण न किया जाए, तो रोग खेत में तेजी से फैल सकता है और फसल को गंभीर नुकसान पहुंचा सकता है।

आर्थिक प्रभाव

झुलसा रोग का रागी उत्पादन पर गहरा आर्थिक प्रभाव पड़ता है, विशेष रूप से संवेदनशील किस्मों में, जहां गंभीर संक्रमण के कारण 50-80 प्रतिशत तक उपज हानि देखी गई है। रोग दानों के भराव और गुणवत्ता दोनों को प्रभावित करता है, जिससे बाजार में उत्पाद का मूल्य घट जाता है। इसके अलावा, रोग अप्रत्यक्ष रूप से चारे की गुणवत्ता में कमी, प्रबंधन लागत में वृद्धि और फसल की संपूर्ण उत्पादकता में गिरावट का कारण बनता है। समय पर नियंत्रण न होने पर यह रोग किसानों की आय और खाद्य सुरक्षा दोनों को गंभीर रूप से प्रभावित कर सकता है।

प्रबंधन

प्रतिरोधी किस्मों का चयन

प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग न केवल उपज की स्थिरता बनाए रखने में सहायक होता है, बल्कि यह एक पर्यावरण अनुकूल और लागत प्रभावी रणनीति भी है। जहां भी संभव हो, किसानों को झुलसा प्रतिरोधी रागी किस्मों जीपीयू-28, जीपीयू-47, जीपीयू-67, पीआर-202 की खेती करनी चाहिए। ये किस्में रोगजनक से स्वाभाविक प्रतिरोध रखती हैं, जिससे संक्रमण की आशंका कम होती है।

नाव आकार पत्ती झुलसा का संक्रमण

पारंपरिक उपाय

झुलसा रोग के प्रबंधन में पारंपरिक विधियां अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। सबसे पहले, किसानों को प्रमाणित और रोगमुक्त बीजों का प्रयोग करना चाहिए, ताकि प्रारंभिक संक्रमण की आशंका कम हो सके। इसके अलावा, फसल चक्र अपनाकर और कटाई के बाद पौध अवशेषों को नष्ट करके रोगजनक के जीवनचक्र को तोड़ा जा सकता है। घना रोपण पौधों के बीच वायु प्रवाह को बाधित कर पत्तियों पर अधिक समय तक नमी बनाए रखता है, जो झुलसा रोग के प्रसार को बढ़ावा देता है। इसलिए रोपाई में उचित दूरी रखना आवश्यक है।

अत्यधिक नाइट्रोजन का प्रयोग पौधों को कोमल बनाता है, जिससे वे संक्रमण के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाते हैं। जल जमाव भी रोग की प्रगति में सहायक होता है। अत: खेत में प्रभावी जल निकासी सुनिश्चित करनी चाहिए। इन सभी उपायों को अपनाकर रोग पर प्रभावी नियंत्रण पाया जा सकता है।

जैविक नियंत्रण

जैविक विधियां झुलसा रोग नियंत्रण में पर्यावरण संवेदनशील और टिकाऊ विकल्प प्रदान करती हैं। लाभकारी जीवाणु और कवक रोगजनकों पर प्रभावी नियंत्रण रखते हैं और पौधों की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाते हैं।

- **कवक:** ट्राइकोडर्मा हार्जिनियम (0.3 प्रतिशत)
- **जीवाणु:** स्यूडोडोमोनास फ्लोरेसेंस (0.6 प्रतिशत)

इनका उपयोग बीज उपचार, मृदा मिश्रण और पर्णीय छिड़काव के रूप में किया जा सकता है। यह रोगजनक की सक्रियता को कम करता है, पौधों की वृद्धि और रोग प्रतिरोधक क्षमता में सुधार करता है। रसायनों पर निर्भरता को घटाकर प्राकृतिक संरक्षण सुनिश्चित करता है।

रागी में झुलसा रोग फसल की उपज और गुणवत्ता दोनों के लिए गंभीर संकट है। रोग की प्रारंभिक पहचान, कृषि उपयुक्त रोकथाम विधियों का पालन, समय पर फफूंदनाशकों का उपयोग और प्रतिरोधी किस्मों को अपनाना प्रभावी प्रबंधन के लिए अनिवार्य हैं। समय पर रोग की पहचान कर उचित उपाय अपनाने से हानि को न्यूनतम किया जा सकता है। ■

रोग के लक्षण

पत्ती झुलसा

पत्ती झुलसा रागी में झुलसा रोग का प्रारंभिक और सबसे सामान्य रूप है। इसके लक्षण सबसे पहले पत्तियों पर छोटी नौका आकार के धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं। इन धब्बों का केंद्र अक्सर धूसर या राख जैसा भूरा होता है, जबकि किनारे गहरे भूरे रंग के होते हैं। अनुकूल मौसम विशेषकर उच्च आर्द्रता और पत्तियों पर पानी में ये धब्बे आकार में बढ़कर आपस में मिल जाते हैं और मृत ऊतक का निर्माण करते हैं। जैसे-जैसे संक्रमण बढ़ता है, गंभीर रूप से प्रभावित पत्तियां नीचे की ओर सूखने लगती हैं। इससे पौधे की प्रकाश संश्लेषण क्षमता घटती है और उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

बालियां और फिंगर झुलसा

यह रागी में झुलसा रोग का वह चरण है, जो प्रजनन अवस्था में प्रकट होता है और सीधे उपज को प्रभावित करता है। जब रोग बालियों की गर्दन को संक्रमित करता है, तो वह काली पड़ने लगती है, सूख जाती है और अंतत: इतनी कमजोर हो जाती है कि बालियां टूटकर गिर सकती हैं या पूरी तरह सूख जाती हैं। वहीं फिंगर्स (दाने वाली बालियां) पर भी धब्बे उभरने लगते हैं, जिससे दाने भरना रुक जाते हैं और वे सिकुड़कर खराब हो जाते हैं। इस अवस्था में रोग दाने की गुणवत्ता और मात्रा दोनों को गंभीर रूप से प्रभावित करता है।

अंकुरण काल झुलसा

यह रागी की प्रारंभिक वृद्धि अवस्था में होने वाला संक्रमण है, जो पौधों की जीवित रहने की क्षमता को सीधे प्रभावित करता है। इस अवस्था में कोलीऑप्टाइल और प्राथमिक पत्तियों पर पानी भरे, गीले घाव दिखाई देते हैं। इन घावों के कारण पौधे कमजोर हो जाते हैं और कई बार पूरी तरह मर जाते हैं, जिससे खेत में पौधों की संख्या घट जाती है। इसका प्रभाव फसल की समानता और घनत्व पर भी पड़ता है। यदि समय पर प्रबंधन न किया जाए, तो यह असमान अंकुरण और खराब प्रारंभिक विकास का कारण बनता है।

कार्बन खेती जलवायु स्मार्ट कृषि का सशक्त मॉडल

आनन्द प्रसाद राकेश[1], संतोष कुमार सिंह[1], आर.के. झा[1] और **शिवनाथ सुमन[2]**

"कार्बन खेती एक नवाचार आधारित कृषि प्रणाली है, जिसका उद्देश्य मृदा, पौधों और अन्य जैविक अवयवों में कार्बन का संचयन बढ़ाकर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करना है। आधुनिक कृषि ने उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि की है, किंतु इसके साथ मृदा क्षरण, पोषक तत्वों का असंतुलन, ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन और पर्यावरणीय असंतुलन जैसी गंभीर समस्याएं भी उत्पन्न हुई हैं। इन चुनौतियों से निपटने हेतु कार्बन खेती एक प्रभावी समाधान प्रस्तुत करती है। इस प्रणाली में कृषि वानिकी, संरक्षण कृषि, फसलचक्रण, जैविक खेती, पशुधन प्रबंधन, बायोचार उत्पादन तथा आर्द्रभूमि पुनर्स्थापन जैसी तकनीकों का समावेश किया जाता है, जो मृदा स्वास्थ्य, जैव विविधता, जल संरक्षण और कार्बन संचयन को बढ़ावा देती हैं। '4 पर 1000' पहल के अनुसार, मृदा कार्बन में वार्षिक 0.4 प्रतिशत की वृद्धि वैश्विक कार्बन डाइऑक्साइड की वृद्धि की भरपाई करने में सहायक हो सकती है। अत: कार्बन खेती न केवल कृषि की उत्पादकता एवं किसानों की आय में वृद्धि का साधन है, बल्कि यह जलवायु-स्मार्ट कृषि का एक सशक्त और टिकाऊ मॉडल भी है, जो पर्यावरणीय संतुलन और खाद्य सुरक्षा दोनों को सुनिश्चित करता है।"

कार्बन खेती जलवायु अनुकूल कृषि प्रबंधन की एक ऐसी प्रणाली है, जो मृदा, पौधों और अन्य जैविक पदार्थों में कार्बन को संचित करने तथा वायुमंडल से ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने में सहायक है। आधुनिक कृषि में अधिक उपज देने वाली प्रजातियों, रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और उन्नत सिंचाई प्रणालियों के प्रयोग से उत्पादन में वृद्धि हुई है, जिससे विश्व में भूख और कुपोषण की समस्या में कमी आई है। किंतु इसके दुष्परिणाम स्वरूप पर्यावरणीय असंतुलन, मृदा क्षरण, जैव विविधता में कमी, जल प्रदूषण तथा स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं भी उत्पन्न हुई हैं।

रसायनों के अविवेकपूर्ण प्रयोग से मृदा की उर्वराशक्ति में कमी, पोषक तत्वों का असंतुलन तथा ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में वृद्धि जैसी समस्याएं सामने आई हैं। इन समस्याओं के समाधान हेतु वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में कार्बन खेती की आवश्यकता और अधिक महसूस की जा रही है।

मृदा में जैविक कार्बन बढ़ाने से मृदा स्वास्थ्य, फसल उत्पादन, जल धारण क्षमता, खाद्य सुरक्षा तथा मृदा की गुणवत्ता में सुधार होता है, जिससे रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता भी घटती है। वर्ष 2015 में आयोजित पेरिस जलवायु शिखर सम्मेलन

[1]पंडित दीनदयाल उपाध्याय उद्यान एवं वानिकी महाविद्यालय, पिपराकोठी, पूर्वी चंपारण; [2]स्नातकोत्तर कृषि महाविद्यालय, डा. राजेंद्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा (बिहार)

(सीओपी-21) में '4 पर 1000' पहल के अंतर्गत यह दर्शाया गया कि मृदा कार्बन में मात्र 0.4 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि वैश्विक कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन की नई वृद्धि की भरपाई कर सकती है।

संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट के अनुसार, कुल ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कृषि क्षेत्र का योगदान लगभग 24 प्रतिशत है, जिसमें मुख्यत: मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड शामिल हैं। अत: कार्बन खेती एक ऐसी प्रभावी पद्धति है, जो जलवायु परिवर्तन और खाद्य सुरक्षा दोनों चुनौतियों का समग्र समाधान प्रस्तुत करती है।

कार्बन खेती में अपनाई जाने वाली प्रमुख प्रणाली

कृषि वानिकी

कृषि वानिकी में खेती के साथ पेड़ों को लगाया जाता है। यह पद्धति न केवल वायुमंडलीय कार्बन का संचयन करती है, बल्कि जैव विविधता को भी बढ़ावा देती है। वृक्ष अपने विकास के दौरान पत्तियों, तनों तथा जड़ों में कार्बन एकत्रित करते हैं। कृषि वानिकी प्रणाली फसलों या पशुधन के साथ वृक्षों का एकीकरण करती है, जिससे कार्बन का संचयन वृक्ष जैवभार (बायोमास) के साथ-साथ मृदा में भी होता है।

वृक्षों की जड़ें जैविक पदार्थों का स्राव करती हैं, जो सूक्ष्मजीवों के लिए पोषक तत्वों से भरपूर खाद्य स्रोत बनते हैं। इससे सूक्ष्मजीवों की क्रियाशीलता बढ़ती है और मृदा में कार्बन समृद्ध पदार्थों की मात्रा में वृद्धि होती है। कृषि वानिकी मृदा अपरदन को रोकने, वायुरोधक का कार्य करने तथा भारी वर्षा के कारण होने वाले ऊपरी मृदा कटाव को कम करने में सहायक है, जिससे कार्बन संचयन को प्रोत्साहन मिलता है।

वृक्षों और पशुधन का संतुलित उपयोग, जैसे सिल्वीपास्चर या एली क्रॉपिंग, न केवल कार्बन भंडारण को बढ़ाता है, बल्कि किसानों की आय में विविधता लाने के साथ-साथ पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

जैव अपशिष्ट से वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन

पशुधन प्रबंधन

पशुधन जैसे-गाय, भैंस, भेड़ और बकरी से मीथेन तथा नाइट्रस ऑक्साइड का उत्सर्जन होता है, जो जलवायु परिवर्तन में योगदान देता है। तथापि, उचित और वैज्ञानिक प्रबंधन अपनाकर पशुपालन को अधिक टिकाऊ बनाया जा सकता है। चक्रीय चराई प्रणाली चरागाह की गुणवत्ता में सुधार करती है। वनस्पति के पुनर्जनन को प्रोत्साहित करती है तथा मृदा में कार्बन संचयन को बढ़ाती है। उच्च गुणवत्ता एवं संतुलित चारे का उपयोग, विशेषकर दलहनी एवं पौष्टिक चारे के प्रयोग से, पशुओं में मीथेन उत्सर्जन को कम किया जा सकता है। गोबर प्रबंधन भी इस संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण है। यदि गोबर को बिना ऑक्सीजन के सड़ने दिया जाए, तो उससे अधिक मात्रा में मीथेन गैस उत्पन्न होती है; जबकि एरोबिक कम्पोस्टिंग अथवा बायोगैस संयंत्रों के माध्यम से इसके वैज्ञानिक प्रबंधन से ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कमी लाई जा सकती है। इस प्रक्रिया से न केवल उत्सर्जन घटता है, बल्कि उत्पादित बायोगैस एक स्वच्छ एवं नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत के रूप में भी उपयोगी सिद्ध होती है।

फसलचक्र एवं विविधीकरण

फसलचक्र में एक ही भूमि पर अलग-अलग फसलों को निश्चित क्रम में उगाया जाता है। इससे मृदा का पोषण संतुलित रहता है तथा कीट-व्याधि प्रबंधन में सुधार होता है। फसल विविधीकरण में एक ही मौसम में अनेक प्रकार की फसलें जैसे-अनाज, दालें, फल और सब्जियां उगाई जाती हैं, जिससे उत्पादन का जोखिम घटता है, भूमि उपयोग की दक्षता बढ़ती है और किसानों की आय के स्रोतों में विविधता आती है।

विभिन्न फसलों की जड़ संरचनाएं और कार्बन संचयन की दरें अलग-अलग होती हैं, इसलिए मिश्रित फसल प्रणालियां मृदा में अधिक स्थिर और दीर्घकालिक कार्बन संग्रह सुनिश्चित करती हैं। दलहनी फसलें वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर आगामी फसलों की उत्पादकता तथा जैवभार को बढ़ाती हैं, जिससे मृदा में कार्बन स्तर की वृद्धि होती है। इसके साथ ही निरंतर पौध आवरण मृदा के क्षरण को रोकता है और उसकी संरचना को सुदृढ़ बनाता है, जो दीर्घकालीन मृदा स्वास्थ्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

गेहूं की बुआई में जीरो टिलेज का प्रयोग

जैविक खेती

जैविक खेती एक टिकाऊ एवं पर्यावरण अनुकूल कृषि पद्धति है, जो रासायनिक आदानों पर निर्भरता कम कर प्राकृतिक संसाधनों के जिम्मेदार और संतुलित उपयोग पर बल देती है। कम्पोस्ट, गोबर खाद तथा हरी खादों का प्रयोग मृदा में ह्यूमस की मात्रा बढ़ाने के साथ-साथ कार्बन स्तर में भी वृद्धि करता है। रासायनिक उर्वरकों के उपयोग से परहेज करने के कारण मृदा में सूक्ष्मजीवों की

संरक्षित खेती

संरक्षित खेती में कम या शून्य जुताई, फसलचक्र, फसल अवशेष प्रबंधन तथा आवरण फसलें शामिल होती हैं। यह पद्धति मृदा स्वास्थ्य की रक्षा करती है और कार्बन संचयन को बढ़ावा देती है। शून्य जुताई से मृदा में संचित कार्बन के कार्बन डाइऑक्साइड में रूपांतरण की संभावना कम हो जाती है, जबकि फसल अवशेष और मल्च मृदा के कटाव को रोकने में सहायक होते हैं। इससे मृदा में नमी का संरक्षण होता है, जल रिसाव एवं जल धारण क्षमता में सुधार आता है तथा सूक्ष्मजीवों की क्रियाशीलता बढ़ती है। इसके विपरीत, पारंपरिक गहरी जुताई मृदा में संचित कार्बन को वायुमंडल में छोड़ देती है, जिससे ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन बढ़ता है और ग्लोबल वार्मिंग को बढ़ावा मिलता है। संरक्षित खेती अपनाने से न केवल कार्बन संचयन में वृद्धि होती है, बल्कि कृषि उत्पादन की लागत में भी कमी आती है।

विविधता बढ़ती है, जो कार्बन पृथक्करण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

सूक्ष्मजीव कार्बनिक पदार्थों को विघटित कर उन्हें स्थिर कार्बनिक यौगिकों में परिवर्तित करते हैं, जो लंबे समय तक मृदा में बने रहते हैं। इस प्रकार जैविक खेती से ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कमी आती है तथा कृषि की कार्बन फुटप्रिंट घटती है। जैविक खेती पर आधारित पारिस्थितिकी तंत्र न केवल जैव विविधता का संरक्षण करते हैं, बल्कि उपभोक्ताओं को उच्च गुणवत्ता और सुरक्षित कृषि उत्पाद भी प्रदान करते हैं।

बायोचार उत्पादन

बायोचार पायरोलिसिस प्रक्रिया से प्राप्त

फसल विविधीकरण हेतु उद्यानिकी फसलों में अंतरवर्ती खेती

एक स्थायी एवं कार्बन समृद्ध पदार्थ है, जिसमें जैवभार को सीमित ऑक्सीजन की उपस्थिति में गर्म किया जाता है। यह कई वर्षों तक मृदा में स्थायी रूप से बना रह सकता है और एक प्रभावी कार्बन सिंक के रूप में कार्य करता है। बायोचार मृदा को छिद्रयुक्त संरचना प्रदान करता है। इससे सूक्ष्मजीवों की गतिविधि में वृद्धि होती है तथा पोषक तत्वों का ह्रास कम होता है।

इसके प्रयोग से मृदा की केटायन विनिमय क्षमता, पोषक तत्व उपयोग दक्षता और जल धारण क्षमता में उल्लेखनीय सुधार होता है। परिणामस्वरूप मृदा की उर्वराशक्ति बढ़ती है और फसल उत्पादन में वृद्धि होती है। इस प्रकार बायोचार का उपयोग मृदा में गुणवत्ता सुधार, कृषि उत्पादकता बढ़ाने और कार्बन संचयन इन तीनों लक्ष्यों को एक साथ प्राप्त करने में सहायक होता है, साथ ही रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता को भी कम करता है।

आर्द्र भूमि पुनर्स्थापन

आर्द्र भूमि अत्यधिक कार्बन संचयन करने वाले महत्वपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र हैं। मानवीय गतिविधियों के कारण इनका व्यापक क्षरण हुआ है। इससे इनमें संचित विशाल मात्रा में कार्बन वायुमंडल में मुक्त हो गया है। आर्द्र भूमि पुनर्स्थापन के माध्यम से ये क्षेत्र पुनः सक्रिय कार्बन सिंक के रूप में कार्य करने लगते हैं।

जल जमाव की परिस्थितियां ऑक्सीजन की कमी और कार्बनिक पदार्थों की अधिकता उत्पन्न करती हैं, जो कार्बन संचयन के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करती हैं। इस प्रकार पुनर्जीवित आर्द्र भूमि न केवल जलवायु परिवर्तन के शमन में सहायक होती हैं, बल्कि जैव विविधता के संरक्षण, जल गुणवत्ता में सुधार तथा भूमिगत जल के पुनर्भरण में भी महत्वपूर्ण योगदान देती हैं।

अतः यह स्पष्ट होता है कि कार्बन खेती केवल एक तकनीकी अवधारणा नहीं, बल्कि एक समग्र कृषि दर्शन है, जो उत्पादन, पर्यावरण और समाज तीनों को आपस में जोड़ती है। यह कृषि प्रणाली खेती को कार्बन उत्सर्जक से कार्बन-संग्राहक में परिवर्तित करने की क्षमता रखती है। कृषि वानिकी, संरक्षित खेती, फसलचक्रण, जैविक खेती, पशुधन प्रबंधन, बायोचार निर्माण तथा आर्द्रभूमि पुनर्स्थापन जैसी पद्धतियां मिलकर मृदा स्वास्थ्य, जल संरक्षण, जैव विविधता और किसानों की आजीविका में सुधार लाती हैं।

वर्ष 2015 के पेरिस समझौते में प्रस्तुत '4 पर 1000' पहल ने यह स्पष्ट संदेश दिया कि मृदा में कार्बन की थोड़ी सी वृद्धि भी वैश्विक कार्बन डाइऑक्साइड के संतुलन को स्थिर रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। यदि इन पद्धतियों को नीतिगत समर्थन, अनुसंधान और प्रभावी प्रशिक्षण के साथ व्यापक रूप से अपनाया जाए, तो कार्बन खेती जलवायु स्मार्ट कृषि का एक सशक्त और व्यावहारिक मॉडल बन सकती है। इस प्रकार यह कहना उचित होगा कि कार्बन खेती को अपनाकर न केवल वर्तमान पर्यावरणीय संकट को कम कर सकते हैं, बल्कि भावी पीढ़ियों के लिए एक स्वच्छ, सुरक्षित और टिकाऊ भविष्य की मजबूत नींव भी रख सकते हैं।

उन्नत तकनीक से प्रभावी समाधान

जैविक खाद उत्पादन की उन्नत विधि

अरूण शंकर, के.के. मिश्र, धर्मराज सिंह और **सती शंकर सिंह**

"जैविक खाद का सही उपयोग न केवल खेती की लागत को कम करता है, बल्कि सतत कृषि को भी बढ़ावा देता है। इससे मृदा अपरदन में, जल संरक्षण, मृदा तथा पौधों की स्वास्थ्य वृद्धि में सहायता मिलती है। इसके साथ ही, जैविक खाद जलवायु परिवर्तन से निपटने में भी सहायक है। आईबीएस तीव्र जैविक खाद तकनीक में पादप अपशिष्ट को ट्राइकोडर्मा हार्जिनियम कवक से उपचारित कर 21-45 दिनों में उच्च गुणवत्ता वाली जैविक खाद तैयार की जाती है। इसी तकनीक पर आधारित जमुहार विधि में प्लाईवुड कैबिनेट का उपयोग करके खाद निर्माण किया जाता है। इससे सामग्री और मानव संपर्क के बीच सुरक्षा बनी रहती है। यह विधि नारायण कृषि विज्ञान संस्थान, गोपाल नारायण सिंह विश्वविद्यालय, जमुहार, सासाराम, रोहतास, बिहार में सफलतापूर्वक अपनाई जा रही है और उत्कृष्ट फसल परिणाम दे रही है।"

जैविक खाद का निर्माण न केवल अपशिष्ट प्रबंधन और पर्यावरणीय स्थिरता सुनिश्चित करने का प्रभावी माध्यम है, बल्कि यह किसानों और उद्यमियों के लिए एक आकर्षक व्यावसायिक अवसर भी प्रस्तुत करता है। यह प्रक्रिया बगीचे की कटाई, खाद्य अपशिष्ट और अन्य कार्बनिक पदार्थों को मृदा को समृद्ध करने वाले तथा पौधों की वृद्धि को प्रोत्साहित करने वाले उपयोगी उत्पादों में बदल देती है। उच्च लिग्निनयुक्त कृषि अपशिष्ट जैसे-धान, गेहूं, सरसों, ज्वार, बाजरा और मक्का को ट्राइकोडर्मा और जिप्सम के प्रयोग से कम समय में विघटित किया जा सकता है। यह न केवल अपशिष्ट निपटान की समस्या को हल करता है, बल्कि दीमक और अन्य कीटों के लिए अनुकूल वातावरण बनने से भी रोकता है।

नारायण कृषि विज्ञान संस्थान, गोपाल नारायण सिंह विश्वविद्यालय, जमुहार, रोहतास-821305 (बिहार)

सावधानियां

- परिपक्व बीज वाले खरपतवारों से बचें। यदि इन्हें पर्याप्त गर्मी से नष्ट नहीं किया गया, तो ये अंकुरित होकर खेत में फैल सकते हैं।
- कम्पोस्ट बिन को आवश्यकता से अधिक न भरें। अधिक भरने पर अवायवीय परिस्थितियां बन सकती हैं, जिससे दुर्गंध और सामग्री के चिपकने की समस्या हो सकती है।
- खाद निर्माण के दौरान नमी लगभग 50 प्रतिशत बनाए रखें, ताकि विघटन सही तरीके से हो सके।

कम्पोस्टिंग के माध्यम से जैविक और प्राकृतिक खेती को प्रोत्साहन मिलता है। तैयार जैविक खाद विशेष रूप से व्यावसायिक फसलों जैसे-फल और सब्जियों के लिए अत्यंत लाभकारी है। इससे उत्पादन में वृद्धि और मृदा की उर्वरता दोनों सुनिश्चित होती हैं।

जमुहार विधि द्वारा कम्पोस्ट निर्माण प्रक्रिया

कम्पोस्ट बनाने के लिए सबसे पहले उपयुक्त आकार के प्लाईवुड कैबिनेट तैयार करें। कैबिनेट में सबसे नीचे भूसे की परत बिछाएं और इसके ऊपर पानी और गोबर की खाद का 1:1 मिश्रण डालें। इसके बाद ट्राइकोडर्मा पाउडर की आधी मात्रा समान रूप से बिखेरें।

इसके ऊपर घास की दूसरी परत डालें और जिप्सम पाउडर की आधी मात्रा छिड़कें। इसी क्रम को दोहराते हुए कैबिनेट को पूरी तरह भर दें। भरने के बाद कैबिनेट को लकड़ी के तख्ते से ढक दें।

मिश्रण को पहले पखवाड़े में सप्ताह में एक बार पलटें, ताकि विघटन समान रूप से हो। उसके बाद हर पखवाड़े में एक बार पलटना जारी रखें। लगभग 21-35 दिनों में जमुहार

सारणी 1. पोषक तत्वों की मात्रा

पोषक तत्व	पोषक तत्वों की मात्रा (प्रतिशत)
जैविक कार्बन	24.23
कुल नाइट्रोजन	2.11
पोटेशियम	2.00
फॉस्फोरस	1.81
कैल्शियम	1.82
मैग्नीशियम	0.82
सल्फर	0.7

सारणी 2. आईबीएस तीव्र खाद निर्माण और जमुहार विधि में मुख्य अंतर

विवरण	आईबीएस तीव्र खाद विधि	जमुहार विधि
अपशिष्ट पदार्थ	• 3 भाग धान का भूसा और 1 भाग सुबबूल • 4 भाग धान का भूसा और 1 भाग मुर्गी की खाद • 4 भाग घास और 1 भाग फलीदार पौधे+1 भाग गोबर की खाद • 4 भाग घास+1 भाग क्रोमोलेना ओडोराटा या मिकानिया कॉर्डेटा +1 भाग गोबर की खाद	• 1 भाग धान या गेहूं का भूसा, 1 भाग मोथा या बथुआ या कोई अन्य • मुलायम तने वाला खरपतवार एवं 1 भाग गोबर की खाद और 1 भाग पानी का घोल
अपशिष्ट पदार्थ की बारीक कटाई	भूसे और घास दोनों के लिए आवश्यक	भूसे के लिए आवश्यक है, लेकिन खरपतवार के लिए नहीं
उत्प्रेरक	ट्राइकोडर्मा हार्जिनियम; अपशिष्ट पदार्थ के वजन का 1 प्रतिशत)	ट्राइकोडर्मा हार्जिनियम (अपशिष्ट पदार्थ के वजन का 1 प्रतिशत) और जिप्सम (अपशिष्ट पदार्थ के वजन का 1 प्रतिशत)
संग्रह	ढेर	प्लाईवुड कैबिनेट में स्तरित तरीके से
कम्पोस्ट को पलटना	2 से 4 बार (पहले पखवाड़े में दो बार और हर पखवाड़े एक बार)	2 से 3 बार (पहले पखवाड़े में दो बार और हर पखवाड़े एक बार)
आवश्यक समय	21-45 दिन	21-35 दिन

ट्राइकोडर्मा का उपयोग

कम्पोस्ट तैयार हो जाएगा। तैयार कम्पोस्ट को धूप में सुखाएं, ताकि उसकी नमी लगभग 20 प्रतिशत रह जाए। इसके बाद इसे छानकर थैलियों में पैक किया जा सकता है। इस तैयार उच्च गुणवत्ता वाली जैविक खाद का इस्तेमाल भी किया जा सकता है।

भाकृअनुप की द्विमासिक बागवानी पत्रिका 'फल फूल' जनवरी-फरवरी, 2026 अंक के प्रमुख आकर्षण

- सेब में डीमेटोफोरा जड़ सड़न का प्रबंधन
- आम के बाग में वैज्ञानिक सस्य क्रियाएं
- मिर्च फसल में नीमास्त्र द्वारा ब्लैक एफिड्स का नियंत्रण
- टमाटर के मूल्यसंवर्धन द्वारा रोजगार
- जड़ वाली सब्जियों का शुद्ध बीज उत्पादन
- जीवामृत-खेतों का अमृत
- शहरी क्षेत्रों में उपयोगी छत पर बागवानी
- अकौआ की खेती से बढ़ाएं आय
- बोनसाई उत्पादन युवाओं के लिए उभरता व्यवसाय
- गलगल छिलके से कैंडी बनाने की विधि
- किन्नू फसल कीट एवं रोगों का निदान
- शहतूत का लाभकारी उत्पादन
- जनवरी-फरवरी के बागवानी कार्य

संपर्क सूत्र: प्रभारी, व्यवसाय एकक, भाकृअनुप-कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, कैब-1, पूसा गेट, नई दिल्ली-110012
दूरभाष: 25843657, www.icar.org.in

धान में अजोला की उपयोगिता

आशीष राय[1], अरविन्द कुमार सिंह[2], जीर विनायक[3], अंशु गंगवार[1] और निधि कुमारी[4]

"अजोला एक जलीय फर्न है, जिसकी पत्तियों में एनाबिना नामक नील हरित शैवाल पाया जाता है। यह कम लागत और कम समय में तैयार होने वाली एक उत्कृष्ट हरी खाद है, जो खरीफ की खेती में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। विशेष रूप से धान की फसल के लिए अजोला को वरदान माना जाता है। इसमें प्रचुर मात्रा में नाइट्रोजन पोषक तत्व पाया जाता है, जिससे धान के पौधों की वृद्धि एवं विकास बेहतर होता है। धान की फसल में रोपाई के 10 से 15 दिनों बाद, पानी से भरे खेत में अजोला को 1 कि.ग्रा. प्रति वर्ग मीटर की दर से डाला जा सकता है। यह खेत के पानी की सतह पर हरे रंग की परत के रूप में फैल जाता है और धीरे-धीरे मृदा में मिलकर पोषक तत्व उपलब्ध करवाता है। अजोला के प्रयोग से मृदा का स्वास्थ्य भी बेहतर रहता है। यह देखा गया है कि यदि वर्मीकम्पोस्ट एवं सामान्य खाद बनाने में अजोला का उपयोग किया जाए, तो केंचुओं का वजन और विकास तेजी से होता है। इसके साथ ही खाद में जैविक घटकों की मात्रा बढ़ती है, जिससे खेत में नाइट्रोजन की उपलब्धता बढ़ती है और मृदा की उर्वराशक्ति में सुधार होता है।"

मृदा हेतु लाभकारी

अजोला वायुमंडल में उपस्थित नाइट्रोजन गैस को अपने अंदर स्थिर कर लेता है। जब धान की फसल में पानी कम होता है और अजोला मृदा के संपर्क में आता है, तो यह सड़कर मृदा में अपघटित हो जाता है। अपघटन के बाद अजोला कार्बनिक खाद के रूप में मृदा में रहता है और कुछ लाभदायक बैक्टीरिया, जैसे-नाइट्रोबैक्टर और नाइट्रोसोमोनास, इसकी मदद से नाइट्रोजन को नाइट्रेट के रूप में परिवर्तित कर देते हैं। यह प्रक्रिया धान की फसल के लिए अत्यंत लाभकारी होती है और मृदा की उर्वराशक्ति को बढ़ाती है।

कृषि में अजोला का उपयोग हरी खाद के रूप में प्राकृतिक पोषक तत्व प्रदान करने हेतु धान के साथ सह-खेती में किया जाता है। देश के अनेक क्षेत्रों में यह प्रचलन है कि धान की रोपाई से पहले या 15-20 दिनों बाद नर्सरी अथवा तालाब में उगाए गए अजोला को खेत में डाला जाता है, जिससे वह शीघ्रता से पूरे खेत में फैल जाता है।

धान के साथ सह-फसल के रूप में अजोला उगाने का लाभ यह है कि प्रारंभिक अवस्था में धान के पौधों की आंशिक छाया और खेत में उपलब्ध पानी अजोला के विकास के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करते हैं। इस अवधि में थोड़ी मात्रा में फॉस्फोरस एवं नाइट्रोजन उर्वरकों का प्रयोग अजोला तथा धान दोनों की वृद्धि को बढ़ावा देता है।

जब खेत में पानी की मात्रा कम हो जाती है, तब धान के पौधों की छाया और जल की कमी के कारण अजोला सूख जाता है। इसके पश्चात अजोला में उपस्थित एनाबेना द्वारा स्थिर की गई नाइट्रोजन धीरे-धीरे मृदा में मिल जाती है, जिसका उपयोग धान की फसल के दाना निर्माण तथा अगले मौसम की फसलों द्वारा किया जाता है।

नाइट्रोजन के अतिरिक्त, अजोला प्रकाश संश्लेषण के माध्यम से कार्बन को भी स्थिर करता है, जिससे प्रत्येक फसलचक्र में पर्याप्त

अजोला उत्पादन इकाई

[1]कृषि विज्ञान केन्द्र-परसौनी; [2]कृषि विज्ञान केन्द्र-सारण; [3]कृषि विज्ञान केन्द्र-पिपराकोठी; [4]कृषि विज्ञान केन्द्र-जाले, दरभंगा, पूर्वी चंपारण, डा. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा समस्तीपुर (बिहार)

लोकप्रिय हरी खाद

अजोला एक जलीय फर्न है, जिसे किसी भी छायादार स्थान पर आसानी से तैयार किया जा सकता है। सामान्यत: यह पाया गया है कि अजोला के 1 कि.ग्रा. उत्पादन पर लगभग 1 से 2 रुपये की ही लागत आती है। जल में विकसित होने के कारण अजोला का उत्पादन पानी से भरे गड्ढों तथा छायादार स्थानों के लिए अत्यंत उपयुक्त है। यह शैवाल की तरह हरे-नीले रंग का दिखाई देता है। इसकी पत्तियां अत्यंत छोटी होती हैं, जो आपस में सघन रूप से जुड़ी रहती हैं। इसी कारण यह जल की सतह पर आसानी से तैरता रहता है। इसकी जड़ें भूरे रंग की होती हैं, जो पानी के भीतर स्वतंत्र रूप से लटकी रहती हैं। अजोला उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में ताजे पानी के तालाबों, छोटी नदियों तथा बाढ़ प्रभावित खेतों की सतह पर प्राकृतिक रूप से पाया जाता है। आदर्श विकास परिस्थितियों में यह फर्न अत्यंत तीव्र गति से बढ़ता है और फैलता है तथा 2-5 दिनों में अपना वजन दोगुना करने की क्षमता रखता है। इसी कारण अजोला उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय कृषि प्रणालियों में एक लोकप्रिय हरी खाद के रूप में व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है।

मात्रा में कार्बनिक पदार्थ मृदा में जुड़ता है। इससे मृदा की संरचना, उर्वरता और कृषि पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता में निरंतर सुधार होता है। इस प्रकार अजोला का उपयोग कृषि

प्राकृतिक नाइट्रोजन का सुगम स्रोत

अजोला अपनाएं-धान की पैदावार बढ़ाएं

उत्पादन पर दीर्घकालिक सकारात्मक प्रभाव डालता है और यह रासायनिक उर्वरकों, विशेषकर यूरिया का प्रभावी एवं पर्यावरण अनुकूल विकल्प सिद्ध होता है।

जलभराव वाली परिस्थितियों में उगाई जाने वाली फसलों के साथ अजोला को अंतरफसल के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। अन्य फसलों में, अजोला को फसल बोने से पूर्व एकल फसल के रूप में उगाकर मृदा में मिला दिया जाता है।

सिफारिशें

- अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए अजोला उत्पादन इकाई का नियमित रखरखाव आवश्यक है।
- अजोला की नियमित कटाई करनी चाहिए, जिससे इसकी निरंतर वृद्धि बनी रहती है।
- अजोला की अच्छी वृद्धि के लिए तापमान 25 से 35 डिग्री सेल्सियस के बीच होना चाहिए।
- ठंडे क्षेत्रों में सर्द मौसम के प्रतिकूल प्रभाव को कम करने हेतु अजोला प्लॉट को प्लास्टिक शीट से ढकना चाहिए।
- पर्याप्त धूप वाली, लेकिन आंशिक रूप से छायादार जगह का चयन करना चाहिए, जिससे अजोला की वृद्धि बेहतर होती है।

उत्पादन

अजोला इकाई की स्थापना के लिए किसी विशेष विशेषज्ञता की आवश्यकता नहीं होती और किसान इसे स्वयं आसानी से कर सकते हैं। अजोला उत्पादन के लिए भूमि को समतल करना आवश्यक है और पानी को स्थिर रखने के लिए भूखंड के किनारे उठाए जाने चाहिए। अजोला का उत्पादन बहुत कम लागत में किया जा सकता है। इसके लिए प्लास्टिक की शीट लेकर उसे लगभग 6 फीट लंबा और 3 फीट चौड़ा (थोड़ा बड़ा भी हो सकता है) काटा जाता है। इसी आकार के अनुसार लगभग 1 फीट गहरा गड्ढा खोदकर उसमें प्लास्टिक शीट बिछाई जाती है और किनारों को चारों ओर ऊपर की ओर उठाया जाता है। इसके ऊपर उपजाऊ मृदा की पतली परत डाली जाती है, जिसमें कम्पोस्ट और जैविक खाद मिलाई हुई हो, और इसमें लगभग 15-20 सें.मी. तक पानी भर दिया जाता है।

ध्यान रखें कि जहां प्लास्टिक शीट लगाई गई हो वह हल्का छायादार स्थान हो और तापमान 25-30 डिग्री सेल्सियस के बीच रहे, जिससे अजोला की वृद्धि और उपज में सुधार होता है। इसके बाद मृदा की सतह पर 2-4 कि.ग्रा. वर्मीकम्पोस्ट, 500 ग्राम सिंगल सुपर फॉस्फेट और 100 ग्राम पोटाश मिलाकर समान रूप से बिछा दें। अंत में अजोला कल्चर को पानी की सतह पर फैला दें। उचित देखभाल करने पर 15-20 दिनों के भीतर अजोला का उत्पादन शुरू हो जाता है। ■

भाकृअनुप के 98वें स्थापना दिवस के अवसर पर लोकप्रिय पत्रिकाओं के विशेषांकों हेतु लेख आमंत्रित

1. खेती पत्रिका के "आजीविका उद्यमिता" विशेषांक हेतु लेख आमंत्रित

इस विशेषांक के लिए आजीविका एवं उद्यमिता विषयक सफलता-गाथाएँ आमंत्रित हैं। प्रस्तुत लेख मौलिक, अप्रकाशित तथा किसी नवाचार, तकनीकी हस्तांतरण, व्यावहारिक समाधान या अभिनव कृषि प्रयोग की सफलता पर आधारित होना चाहिए। लेख सरल, प्रवाहपूर्ण भाषा में तथा आवश्यकता अनुसार सचित्र तैयार किया जाए।

2. फल-फूल पत्रिका के "जैव विविधता" विशेषांक हेतु लेख आमंत्रित

इस विशेषांक के लिए जैव विविधता, संरक्षण, कृषि-परिस्थितिकी तथा संबंधित नवाचारों पर आधारित सफलता-गाथाएँ आमंत्रित हैं। प्रस्तुत लेख मौलिक, अप्रकाशित तथा किसी नवाचार, तकनीकी हस्तांतरण, संरक्षण प्रयास या अभिनव कृषि प्रयोग की सफलता पर आधारित होना चाहिए। लेख सरल, प्रवाहपूर्ण एवं सचित्र तैयार किया जाए। लेखक-निर्देशों का पूर्ण पालन अपेक्षित है।

खेती एवं फल फूल पोर्टल: epatrika.icar.org.in

3. Special Issue of *Indian Farming* on "Environmental Sustainability"

This issue will focus on innovations, technologies, and products that contribute to Environmental Sustainability and support the attainment of the Sustainable Development Goals (SDGs). Articles should present a clear and complete storyline demonstrating how the described method advances specific SDGs and promotes sustainable agricultural practices.

Indian Farming ePubs portal: https://epubs.icar.org.in/index.php/IndFarm/about/submissions

4. Special Issue of *Indian Horticulture* on "Nutrition and Health"

This issue will highlight advancements that enhance nutrition, improve health outcomes, and promote sustainable food systems, contributing to relevant SDGs. Articles should present a coherent narrative demonstrating how the work supports better nutrition and health through horticultural innovations.

Indian Horticulture ePubs portal: https://epubs.icar.org.in/index.php/IndHort/about/submissions

लेखकों से अनुरोध है कि वे लेख प्रस्तुतीकरण (सबमिशन) संबंधी दिशानिर्देशों का सख्ती से पालन करें तथा संबंधित अंग्रेज़ी/हिंदी पत्रिकाओं के ePubs/ePatrika पोर्टल पर ही अपना लेख प्रस्तुत करें। लेख प्रस्तुत करते समय यह स्पष्ट रूप से उल्लेख करें कि लेख विशेषांक के लिए भेजा जा रहा है।

लेखन भेजने की अंतिम तिथि : 28 फरवरी 2026

फरवरी के मुख्य कृषि कार्य

राजीव कुमार सिंह[1], एस.एस. राठौर[1], प्रवीण कुमार उपाध्याय[1], अंजली पटेल[2] और आदित्य सिंह[1]

"फरवरी केवल चल रही फसलों की देखभाल का ही नहीं, बल्कि आगामी कृषि मौसम की तैयारी का भी महत्वपूर्ण समय होता है। इस दौरान किसान जायद फसलों की बुआई की योजना बनाते हैं तथा खेतों की जुताई, खाद प्रबंधन और मृदा की उर्वराशक्ति बनाए रखने के उपाय करते हैं। इसके साथ ही, फसल कटाई की तैयारियां भी इसी महीने से प्रारंभ हो जाती हैं। यदि किसान वैज्ञानिक तरीकों को अपनाकर फरवरी में आवश्यक कृषि कार्यों को समय पर पूरा करें, तो वे अधिक उपज और बेहतर गुणवत्ता की फसल प्राप्त कर सकते हैं। इसके साथ ही पशुपालन और मछली पालन जैसे सहायक कृषि कार्य भी इस समय महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पशुओं के लिए संतुलित आहार एवं उनके स्वास्थ्य की उचित देखभाल डेरी उत्पादों की निरंतर आपूर्ति सुनिश्चित करती है, जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए आय का एक प्रमुख स्रोत है। फरवरी में किए जाने वाले प्रमुख कृषि कार्यों से संबंधित जानकारी इस लेख में प्रस्तुत की गई है।"

फरवरी माह, जिसे माघ-फाल्गुन भी कहा जाता है, में चारों ओर फूल खिलने लगते हैं और ठंड धीरे-धीरे कम होने लगती है। इस समय रबी फसलें जैसे गेहूं, चना, सरसों और मटर अपने विकास की अंतिम अवस्था में होती हैं। मौसम न अधिक ठंडा रहता है और न ही अधिक गर्म, जिससे फसलों की बढ़वार अनुकूल रूप से होती है। इस दौरान किसान सिंचाई, निराई-गुड़ाई तथा खरपतवार नियंत्रण जैसे कार्यों पर विशेष ध्यान देते हैं, ताकि उत्पादन पर किसी प्रकार का नकारात्मक प्रभाव न पड़े। साथ ही, इस समय रोग एवं कीटों के प्रकोप की आशंका भी बढ़ जाती है, इसलिए उनकी समय पर रोकथाम करना अत्यंत आवश्यक होता है।

[1]सस्य विज्ञान संभाग, भाकृअनुप -भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली-110012; [2]महात्मा गांधी उद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, दुर्ग-491001 (छत्तीसगढ़)

गेहूं एवं जौ

सिंचाई

गेहूं की फसल में क्रांतिक अवस्थाओं के अनुसार इस समय तीसरी सिंचाई गांठ बनने की अवस्था (बुआई के 60-65 दिनों बाद), चौथी सिंचाई फूल आने से पूर्व (बुआई के 80-85 दिनों बाद) तथा पांचवीं सिंचाई दूधिया अवस्था (बुआई के 110-115 दिनों बाद) पर की जानी चाहिए। समय पर बोई गई गेहूं की फसल में इस अवधि के दौरान फूल आने लगते हैं। अत: इस अवस्था में सिंचाई की विशेष आवश्यकता होती है। वहीं, पछेती या देर से बोई गई गेहूं की फसल में अपेक्षाकृत कम अंतराल पर सिंचाई करने की आवश्यकता होती है।

पोषक तत्व प्रबंधन

खड़ी फसल में जिंक की कमी के

गेहूं फसल में जस्ता की कमी के लक्षण

लक्षण दिखाई देने पर 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट के घोल का छिड़काव 10 दिनों के अंतराल पर 2-3 बार करना चाहिए। आयरन की कमी से नई पत्तियों पर पीली-हरी धारियों के साथ इंटरवेनल क्लोरोसिस के लक्षण दिखाई देते हैं। आयरन की पूर्ति पर्णीय छिड़काव द्वारा अधिक प्रभावी ढंग से की जा सकती है, जो मृदा अनुप्रयोग की अपेक्षा अधिक लाभकारी पाई गई है। इसके लिए 1-2 प्रतिशत आयरन सल्फेट का पर्णीय छिड़काव अथवा मृदा में 20-150 ग्राम/हैक्टर आयरन सल्फेट का प्रयोग लाभप्रद होता है।

गेहूं फसल में आयरन की कमी के लक्षण

मैंग्नीज की कमी के लक्षण गेहूं की ऊपरी पत्तियों पर नसों के बीच पीली धारियों के रूप में दिखाई देते हैं, जबकि नसें हरी बनी रहती हैं। कुछ पौधों में नसों के बीच भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं, जो आगे चलकर बड़े धब्बों का रूप ले लेते हैं। गेहूं एवं जौ की फसल में मैंग्नीज की कमी की स्थिति में 0.5 प्रतिशत मैंग्नीज सल्फेट के तीन छिड़काव 10-15 दिनों के अंतराल पर करने चाहिए।

रोग एवं कीट प्रबंधन

पीला (गेरूई) रतुआ रोग

लक्षण: इस रोग के लक्षण जनवरी के अंतिम सप्ताह अथवा फरवरी के प्रारंभ में पत्तियों पर पिन के सिर के समान छोटे, अंडाकार एवं चमकीले पीले रंग के धब्बों

पीला/गेरूई रतुआ रोग

के रूप में दिखाई देते हैं। ये धब्बे पत्ती की शिराओं के बीच पंक्तियों में विकसित होकर पीली धारियों का रूप ले लेते हैं। बाद में पत्ती की बाह्य त्वचा के नीचे काले रंग की टेलियम रेखाएं बनती हैं, जो चपटी काली पपड़ी से ढकी रहती हैं। रोगग्रसित पौधों की पत्तियां धीरे-धीरे सूख जाती हैं।

प्रबंधन: खड़ी फसल में प्रोपिकोनाजोल 25 ई.सी. (टिल्ट) या ट्राइडिमिफोन 25 डब्ल्यू.पी. (बेलिटॉन) अथवा टेबुकानाजोल 25 ई.सी. (फोलिकर) का 0.1 प्रतिशत घोल (प्रति एकड़ 200 मि.ली. दवा को 200 लीटर पानी में घोलकर) छिड़काव करें। रोग के प्रकोप एवं फैलाव को देखते हुए 15-20 दिनों के अंतराल पर दूसरा छिड़काव करें। बुआई हेतु प्रमाणित एवं स्वस्थ बीज का ही प्रयोग करें। उत्तर-पश्चिमी मैदानी क्षेत्र के लिए गेहूं की एच.डी. 2967, एच.डी. 3086, डब्ल्यू.एच. 1105, एच.डी. 3043, एच.डी. 3059 एवं डी.पी.डब्ल्यू. 621-50 किस्मों का चयन लाभकारी है।

झुलसा रोग

लक्षण: यह रोग अल्टरनेरिया ट्रिटिसाइना, पायरेनोफोरा ट्रिटिसाई रिपेंटिस एवं बाइपोलेरिस सोरोकिनियाना फफूंदों के कारण उत्पन्न होता है। इसमें पत्तियों पर छोटे, गहरे भूरे रंग के धब्बे बनते हैं, जिनके चारों ओर पीला

झुलसा रोग का प्रकोप

प्रभामंडल दिखाई देता है। बाद में ये धब्बे आपस में मिलकर पर्ण झुलसा रोग का रूप ले लेते हैं।

प्रबंधन: खड़ी फसल में 0.1 प्रतिशत प्रोपिकोनाजोल 25 ई.सी. (टिल्ट) का छिड़काव करें। बुआई से पूर्व बीज को 2.5 ग्राम/ग्राम बीज की दर से कार्बोक्सिन (वीटावैक्स 75 डब्ल्यू.पी.) से उपचारित करें अथवा रोग प्रतिरोधी किस्मों का चयन करें।

माहूं (एफिड): यदि माहूं का प्रकोप अधिक हो तथा इनके प्राकृतिक शत्रुओं की संख्या कम हो, तो क्विनालफॉस 25 ई.सी. (1.0 लीटर), मोनोक्रोटोफॉस 25 ई.सी. (1.4 लीटर) अथवा मिथाइल-ओ-डीमेटॉन 25 ई.सी. (1.0 लीटर) को 600-800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।

माहूं कीट का आक्रमण

चेंपा: रस चूसने वाले कीट चेंपा के नियंत्रण हेतु इमिडाक्लोप्रिड 200 एस.एल. के 20 ग्राम सक्रिय तत्व का छिड़काव खेत के चारों ओर लगभग दो मीटर चौड़े बार्डर क्षेत्र में करें।

चूहा: गेहूं के खेत में चूहों का प्रकोप होने पर जिंक फॉस्फाइड से बने चारे अथवा एल्यूमिनियम फॉस्फाइड की टिकियों का प्रयोग करें। साथ ही इनके नियंत्रण के लिए सामूहिक प्रयास अधिक प्रभावी सिद्ध होते हैं।

निराई-गुड़ाई: जौ की फसल में निराई-गुड़ाई का अच्छा प्रभाव होता है। जौ एवं गेहूं इत्यादि के जिन खेतों में अधिक वर्षा का पानी भर जाता है उनमें

जौ की उन्नत प्रजाति-पूसा शीतल

अनावृत कंडुआ एवं करनाल बंट

लक्षण: अनावृत कंडुआ रोग में बालियों के दानों के स्थान पर काला चूर्ण बन जाता है, जो प्रारंभ में सफेद झिल्ली से ढका रहता है। बाद में झिल्ली फटने पर फफूंद के बीजाणु हवा में फैलकर फूल आने की अवस्था में स्वस्थ बालियों को संक्रमित करते हैं। करनाल बंट रोग टिलिशिया इंडिका कवक के कारण होता है, जिसमें मड़ाई के बाद दानों में दरार के साथ गहरे भूरे रंग के बीजाणु समूह दिखाई देते हैं।

प्रबंधन: बुआई से पूर्व बीज को थीरम 75 डब्ल्यू.एस. (2.5 ग्राम), कार्बेण्डाजिम 50 डब्ल्यू.पी. (2.5 ग्राम), कार्बोक्सिन 75 डब्ल्यू.पी. (2.0 ग्राम) अथवा टेबुकानाजोल 2 डी.एस. (1.0 ग्राम) प्रति ग्राम बीज की दर से उपचारित करें। इसके अतिरिक्त जैव कवकनाशी ट्राइकोडर्मा विरिडी 1 डब्ल्यू.पी. अथवा ट्राइकोडर्मा हारजिनियम 2 डब्ल्यू.पी. की 2.5 ग्राम/हैक्टर मात्रा को 60-75 ग्राम सड़ी हुई गोबर की खाद में मिलाकर 8-10 दिनों तक छाया में रखकर अंतिम जुताई के समय खेत में मिलाना लाभकारी होता है।

गन्ना

पानी निकालने के बाद नाइट्रोजन के लिए कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट (सी.ए.एन.) के डालने से ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ जाती है।

वसंतकालीन गन्ना

बुआई

फरवरी माह वसंतकालीन गन्ने की बुआई के लिए आदर्श समय माना जाता है। वसंतकालीन गन्ने की बुआई देर से कटे धान वाले खेतों तथा तोरिया, मटर एवं आलू की फसल से खाली हुए खेतों में की जा सकती है। इसके लिए अच्छी जल निकासी वाली हल्की दोमट मृदा सर्वोत्तम रहती है। गन्ने की कलमों (सेट्स) को 8-10 सें.मी. गहराई पर तथा 75-90 सें.मी. पंक्ति दूरी पर रोपें। एक हैक्टर क्षेत्र की बुआई के लिए लगभग 60-70 क्विंटल गन्ना पर्याप्त होता है।

प्रजाति चयन

बुआई के लिए स्वस्थ, रोगमुक्त एवं अधिक उपज देने वाली किस्मों का चयन करें। गन्ने की शीघ्र पकने वाली उन्नत प्रजातियों में सी.ए.-0239, सी.ए. एवं को.जे. 85 प्रमुख हैं। मध्यम एवं देर से पकने वाली प्रमुख प्रजातियों में को.शा.-7918, को.शा.-802, को.शा.-8118, को.शा.-767, को.शा.-8432 एवं सी.ए.-0124 शामिल हैं। जलमग्न क्षेत्रों के लिए को.शा.-96436, यू.पी.-9529, यू.पी. -9530, बी.ओ.-54 एवं बी.ओ.-91 प्रजातियां उपयुक्त पाई गई हैं।

पोषक तत्व प्रबंधन

अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए वसंतकालीन गन्ने की फसल में रोपाई के समय 120-150 ग्राम नाइट्रोजन, 50-60

शरदकालीन मक्का

जल प्रबंधन

रबी मक्का की फसल में सामान्यत: 4-5 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। पांचवीं सिंचाई (बुआई के 120-125 दिनों बाद) दाना भरने की अवस्था में अवश्य करनी चाहिए। आवश्यकता होने पर खेत की नमी के अनुसार अतिरिक्त सिंचाई करना उपयुक्त रहता है। समय पर सिंचाई न होने की स्थिति में पौधों की बढ़वार प्रभावित होती है, जिससे उपज में भी कमी आ सकती है।

रोग प्रबंधन

शरदकालीन मक्का में गुलाबी उकठा रोग की स्थिति में दाने बनने के बाद कम नमी के कारण पौधे खेत में सूखने लगते हैं। तने को तिरछा काटने पर निचली पोरों की संवहन नलिकाएं गुलाबी रंग की दिखाई देती हैं तथा सिकुड़ी हुई प्रतीत होती हैं। वहीं, काला चूर्ण उकठा रोग में कटाई से 10-15 दिनों पूर्व पौधे खेत में सूखे दिखाई देने लगते हैं। तनों को तिरछा काटने पर जड़ों के पास संवहन नलिकाएं सिकुड़ी हुई तथा पोरों में काले चूर्ण के कण भरे हुए दिखाई देते हैं। इन रोगों की रोकथाम हेतु स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज का प्रयोग करें। बीजजनित रोगों से बचाव के लिए बुआई से पूर्व बीज को थीरम 2.5 ग्राम अथवा कार्बेण्डाजिम 50 प्रतिशत की 2 ग्राम मात्रा प्रति ग्राम बीज की दर से उपचारित करें। इसके अतिरिक्त कवकजनित रोगों से बचाव के लिए ट्राइकोडर्मा 20 ग्राम प्रति ग्राम बीज की दर से बीजोपचार करना लाभकारी होता है।

कीट नियंत्रण

मक्का की फसल में तनाबेधक एवं पत्ती लपेटक कीट के नियंत्रण हेतु कार्बेरिल 2.5 मि.ली. दवा को 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से फसल पर छिड़काव करें।

सारणी: जायद मौसम हेतु मक्का की संस्तुत उन्नत प्रजातियां

संकर प्रजातियां		
प्रजाति	पकने की अवधि (दिन)	दाने की उपज (क्विं/हैक्टर)
प्रकाश	70-75	35-40
जे.एच. 3459	70-75	35-40
एम.एम.एच.-133	80-85	40-45
प्रो.-4212	80-85	40-45
डक्कन-115	80-85	40-45
पूसा अगेती संकर मक्का-2	70-75	35-40

बेबीकॉर्न			
प्रजाति	उपज (क्विं./हैक्टर) (छिलका सहित)	भुट्टे की लंबाई (सें.मी.)	छिलका रहित उपज (क्विं./हैक्टर)
पूसा अगेती संकर मक्का-2	45-50	5-6	16-18
एच.क्यू.पी.एम.-15	45-50	45-50	16-18
मालवीय संकर मक्का-2	40-45	40-45	16-18
आजाद कमल	40-45	4-5	15-20
एच.एम.-4	45-50	7-8	15-20
प्रकाश	45-50	4-5	16-18

ग्राम फॉस्फोरस तथा 30-40 ग्राम पोटाश प्रति हैक्टर की आवश्यकता होती है। मृदा की उर्वरता बनाए रखने के लिए गोबर की खाद अथवा वर्मीकम्पोस्ट का प्रयोग करें। बुआई के 110-120 दिनों बाद नाइट्रोजन की शेष आधी मात्रा (60-75 ग्राम/हैक्टर) की टॉप ड्रेसिंग करें।

जल प्रबंधन

फरवरी में तापमान बढ़ने लगता है, जिससे गन्ने की बेहतर वृद्धि के लिए नियमित सिंचाई आवश्यक होती है। पहली सिंचाई बुआई के तुरंत बाद करें। इसके पश्चात मृदा की नमी के अनुसार 7-10 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करते रहें। खेत में जलभराव से बचें। इससे जड़ सड़न रोग की आशंका बढ़ जाती है।

खरपतवार नियंत्रण

रोपाई के 20-30 दिनों बाद निराई-गुड़ाई करें। खरपतवार नियंत्रण के लिए रोपाई के 3 दिनों बाद उद्भव-पूर्व अवस्था में एट्राजिन 1.0 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें। उद्भव के बाद 45 दिनों पर हुड के साथ 1.0 लीटर प्रति हैक्टर की दर से ग्लाइफोसेट का छिड़काव करें तथा 90 दिनों बाद एक बार हाथ से निराई करें। इससे गन्ने की अधिकतम उपज प्राप्त की जा सकती है। मृदा की नमी बनाए रखने एवं खरपतवार नियंत्रण हेतु मल्चिंग भी लाभकारी होती है।

कीट नियंत्रण

फरवरी में गन्ने के तनाछेदक, पायरिला तथा व्हाइट ग्रब जैसे कीट सक्रिय हो सकते हैं। तनाछेदक कीट के नियंत्रण के लिए क्विनालफॉस, फॉस्फोमिडोन अथवा प्रोफेनोफॉस का छिड़काव करें। सफेद ग्रब के नियंत्रण हेतु बुआई के समय मृदा में 0.3 प्रतिशत फिप्रोनिल मिलाएं अथवा गन्ने के सेट्स को 20 प्रतिशत क्लोरोपाइरीफॉस घोल में उपचारित करें।

पायरिला के नियंत्रण के लिए रात्रि में प्रकाश जाल का प्रयोग करें तथा फसल अवशेषों को न जलाकर प्राकृतिक शत्रुओं को संरक्षण दें। दीमक एवं अंकुर बेधक कीट से बचाव हेतु बुआई के बाद कूड़ ढकने से पूर्व 5 लीटर क्लोरोपाइरीफॉस को 2000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से कूड़ों में छिड़काव करें अथवा फोरेट 10 जी की 25 ग्राम/हैक्टर मात्रा का प्रयोग करें।

रोग प्रबंधन

लाल सड़न जैसे-रोगों की रोकथाम के लिए प्रमाणित बीज, फसल चक्र एवं रोग प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग करें। रोगग्रस्त पौधों को तुरंत खेत से हटा दें। सीओ 86032, सीओ 86249, सीओएसआई 95071, सीओजी 93076, सीओसी 22, सीओएसआई 6 एवं सीओजी 5 किस्में लाल सड़न के प्रति अपेक्षाकृत प्रतिरोधी पाई गई हैं।

रोपण से पूर्व गन्ने के सेट्स को कार्बेण्डाजिम 50 डब्ल्यू.पी. (0.5 ग्राम प्रति लीटर पानी) अथवा कार्बेण्डाजिम 25 डी. एस. (1 ग्राम प्रति लीटर पानी) से उपचारित करें। इसके अतिरिक्त बाविस्टिन, बेनोमिल, टॉप्सिन एवं एरेटॉन जैसे फफूंदनाशकों के 0.1 प्रतिशत घोल में सेट्स को 52 डिग्री सेल्सियस तापमान पर 18 मिनट तक डुबोकर उपचार करने के बाद बुआई करें।

पेड़ी प्रबंधन: पेड़ी गन्ने से अधिक उपज प्राप्त करने के लिए फसल की कटाई भूमि की सतह के पास से करें। खेत से खरपतवार निकालकर सिंचाई करें तथा मृदा में ओट आने पर 90 ग्राम नाइट्रोजन प्रति हैक्टर की पहली टॉप ड्रेसिंग करें। इसके बाद कल्टीवेटर से गुड़ाई कर उर्वरक को मृदा में मिला दें। गन्ने की दो पंक्तियों के बीच मूंग, उड़द, लोबिया अथवा भिंडी की एक कतार की बुआई की जा सकती है।

जायद मक्का

खेत की तैयारी

जायद ऋतु में मक्का की खेती भुट्टे एवं चारे दोनों प्रयोजनों के लिए की जाती है। इसके लिए पर्याप्त जीवांशयुक्त दोमट मृदा सर्वोत्तम मानी जाती है। भलीभांति समतल तथा अच्छी जल धारण क्षमता वाली भूमि मक्का की खेती के लिए अधिक उपयुक्त होती है। पलेवा करने के उपरांत मृदा पलटने वाले हल से 10-12 सें.मी. गहराई तक एक जुताई करें। इसके बाद कल्टीवेटर अथवा देसी हल से दो-तीन जुताइयां करके पाटा लगाकर खेत को भली-भांति तैयार कर लें।

स्वीटकॉर्न

अनुशंसित किस्में विन ऑरेंज, प्रिया एवं माधुरी है, जो अच्छी उपज प्रदान करती हैं।

शरदकालीन मक्के की उन्नत प्रजाति

बेबीकॉर्न की उन्नत प्रजाति

बुआई

जायद मक्का की बुआई के लिए फरवरी का प्रथम सप्ताह सर्वोत्तम समय होता है। बुआई 20 फरवरी तक अवश्य कर लेनी चाहिए। विलंब से बुआई करने पर दाना निकलने की अवस्था में गर्म हवाएं चलने से सिल्क तथा परागकणों के सूखने की आशंका रहती है, जिससे दाना बनने पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

जायद मौसम में संकर एवं संकुल प्रजातियों के लिए बीज दर क्रमशः 18-20 ग्राम तथा 20-25 ग्राम प्रति हैक्टर उपयुक्त रहती है। बीज को 2 ग्राम कार्बेण्डाजिम अथवा 2.5 ग्राम थीरम नामक फफूंदनाशी से प्रति ग्राम बीज की दर से उपचारित कर बुआई करें। बुआई 60 सें.मी.×20-25 सें.मी. की दूरी पर करनी चाहिए।

पोषक तत्व प्रबंधन

उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करना सर्वोत्तम रहता है। जिन खेतों में जिंक की कमी पाई जाती है, वहां 20 ग्राम जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर की दर से अंतिम जुताई के समय मृदा में मिलाना चाहिए।

यदि किसी कारणवश मृदा परीक्षण न करवाया गया हो, तो संकर एवं संकुल प्रजातियों के लिए 80:40:40 ग्राम नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करना चाहिए। नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा बुआई के समय दें, जबकि नाइट्रोजन की शेष आधी मात्रा बुआई के 30 दिनों बाद टॉप ड्रेसिंग के रूप में दें।

जल प्रबंधन

- जायद मक्का की फसल में सामान्यतः 5-6 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है।10-12 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए। जीरा निकलने की अवस्था में खेत में पर्याप्त नमी का होना अत्यंत आवश्यक है।

खरपतवार प्रबंधन

मक्का की फसल की प्रारंभिक

मटर

- **जल प्रबंधनः** मटर की फसल में पुष्पण अथवा फली बनने की प्रारंभिक अवस्था में एक या दो सिंचाई करना लाभप्रद होता है। पौधों को पाले से बचाने के लिए भी आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए। देर से बोई गई मटर की फसल में फली आने पर सिंचाई करें। अगेती फसल इस समय पकने की अवस्था में होती है, अतः समय पर कटाई कर लेनी चाहिए।

पौध संरक्षण

चूर्णिल आसिता

लक्षणः रोगग्रस्त फसल में पत्तियों एवं फलियों पर सफेद चूर्ण जैसा पदार्थ फैल जाता है।

प्रबंधनः रोग के प्रारंभिक लक्षण दिखाई देते ही सल्फरयुक्त कवकनाशी जैसे सल्फेक्स 2.5 ग्राम/हैक्टर या घुलनशील गंधक 3.0 ग्राम/हैक्टर अथवा कार्बेण्डाजिम 500 ग्राम या ट्राइडेमॉर्फ (80 ई.सी.) 500 मि.ली. को 800-1000 लीटर पानी में घोलकर 15 दिनों के अंतराल पर 2-3 छिड़काव करें।

रतुआ रोग

लक्षणः इस रोग से पौधों की वृद्धि रुक जाती है। पहले पत्तियों पर पीले धब्बे बनते हैं, बाद में तनों पर फैल जाते हैं तथा धीरे-धीरे हल्के भूरे रंग के हो जाते हैं।

प्रबंधनः रोग नियंत्रण के लिए डाइथेन एम-45 (2 ग्राम) या हेक्साकोनाजोल (1 लीटर/हैक्टर) को 600 लीटर पानी में घोलकर 2-3 छिड़काव करें एवं उचित फसलचक्र अपनाएं।

फलीबेधक कीट

लक्षणः यह कीट फलियों में छेद बनाकर बीजों को नुकसान पहुंचाता है। फलियों पर सूक्ष्म छिद्र दिखाई देने से इसकी उपस्थिति का पता चलता है।

प्रबंधनः फली बनने की अवस्था में इमिडाक्लोप्रिड 0.5 प्रतिशत या डाइमेथोएट 0.03 प्रतिशत का 400-600 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। शीघ्र पकने वाली किस्मों का उपयोग एवं समय पर बुआई करना फली बेधक के प्रकोप से बचाव में सहायक होता है।

लीफ माइनर कीट

लक्षणः इस कीट का लार्वा पत्तियों में सुरंग बनाकर हरा पदार्थ खाता है, जिससे पत्तियों पर टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएं बन जाती हैं।

प्रबंधनः नियंत्रण हेतु फूल आने से 15 दिनों पूर्व फसल पर 0.025 प्रतिशत मिथाइल डेमेटॉन (100 मि.ली. मेटासिस्टॉक्स 25 ई.सी.) या साइपरमेथ्रिन 1.50 लीटर को 1000 लीटर पानी में घोलकर खड़ी फसल पर 14 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें।

माहूं

लक्षणः माहूं कीट पत्तियों एवं कोमल तनों से रस चूसकर चिपचिपा पदार्थ स्रावित करता है, जिससे प्रभावित भागों पर काली फफूंद का प्रकोप हो जाता है।

प्रबंधनः इसकी रोकथाम के लिए 0.05 प्रतिशत मेटासिस्टॉक्स या 0.05 प्रतिशत रोगोर के घोल का छिड़काव कीट दिखाई देते ही 15-20 दिनों के अंतराल पर आवश्यकता अनुसार 1-2 बार करें।

अवस्था में खरपतवारों से अधिक क्षति होती है, इसलिए समय पर निराई-गुड़ाई करना आवश्यक है। खरपतवार नियंत्रण के लिए एट्राजीन 50 प्रतिशत डब्ल्यू. पी. का 1.0-1.5 ग्राम प्रति हैक्टर की दर से अंकुरण से पूर्व प्रयोग किया जा सकता है।

- इसके अतिरिक्त एलाक्लोर 50 प्रतिशत ई.सी.की 4-5 लीटर मात्रा को 800 लीटर पानी में घोलकर बुआई के 48 घंटे के भीतर छिड़काव करने से खरपतवारों पर प्रभावी नियंत्रण पाया जा सकता है।

चने की उन्नत प्रजाति

मसूर

जल प्रबंधन

मसूर की फसल को फरवरी में अधिक सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती, फिर भी फूल आने एवं दाने भरने की अवस्था में हल्की सिंचाई की आवश्यकता पड़ सकती है। अतिरिक्त सिंचाई से बचना चाहिए। इससे खेत में जलभराव की स्थिति बन जाती है, जिससे जड़ों के सड़ने का खतरा बढ़ जाता है और फसल को नुकसान पहुंच सकता है।

पौध संरक्षण

पाउडरी मिल्ड्यू

लक्षण: मसूर की फसल में यह रोग एरीसायफी पॉलीगोनी नामक कवक से होता है। फूल आने की अवस्था इस रोग के प्रति अधिक संवेदनशील होती है। अनुकूल परिस्थितियों में यह रोग अधिक हानि पहुंचाने में सक्षम होता है तथा धीरे-धीरे तनों, पत्तियों एवं फलियों पर फैल जाता है।

प्रबंधन: रोगग्रस्त फसल पर ट्राइडेमॉर्फ 0.75 लीटर प्रति हैक्टर की दर से अथवा 2 प्रतिशत घुलनशील गंधक का छिड़काव करें।

रतुआ रोग

लक्षण: यह एक कवकीय रोग है, जिसके कारण मसूर के पौधों की पत्तियों पर छोटे सफेद दाने दिखाई देने लगते हैं। ये दाने बाद में नारंगी-भूरे रंग में बदल जाते हैं तथा पत्तियों, तनों एवं फलियों पर फैल जाते हैं।

प्रबंधन: रोग के लक्षण दिखाई देते ही फसल पर 0.25 प्रतिशत मैंकोजेब घोल (2.5 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी) का छिड़काव करना चाहिए।

माहूं

लक्षण: मसूर की फसल में माहूं कीट पत्तियों एवं अन्य कोमल भागों का रस चूसकर हानि पहुंचाता है। प्रभावित भाग सूखने लगते हैं तथा पौधा कमजोर हो जाता है।

तेलिया या थ्रिप्स

लक्षण: तेलिया या थ्रिप्स कीट मसूर की पत्तियों, फूलों एवं फलियों पर पाया जाता है। यह पत्तियों से रस चूसता है, जिससे उन पर सफेद रंग के चकत्ते बन जाते हैं। मृदा में नमी की कमी होने पर इस कीट से अधिक नुकसान हो सकता है।

प्रबंधन: माहूं एवं तेलिया कीट के नियंत्रण के लिए फॉस्फोमिडान (85 ई.सी.) 250 मि.ली. या क्लोरोपायरीफॉस (20 ई.सी.) 750 मि.ली. या डायमिथियेट (30 ई.सी.) 500 मि.ली. को 500-600 लीटर पानी प्रति हैक्टर में घोलकर छिड़काव करें।

चना

जल प्रबंधन

चना की फसल में आवश्यकता अनुसार पुष्पण से पूर्व सिंचाई करें। फूल आने की अवस्था में सिंचाई नहीं करनी चाहिए, अन्यथा फूल झड़ने से उपज में हानि हो सकती है। बारानी क्षेत्रों में यदि जाड़े की वर्षा न हुई हो अथवा जल की उपलब्धता हो, तो बुआई के लगभग 75 दिनों बाद एक सिंचाई करना लाभप्रद होता है। असिंचित क्षेत्रों में चने की कटाई फरवरी के अंत में प्रारंभ हो जाती है।

पौध संरक्षण

झुलसा रोग

लक्षण: चने की फसल में निचली पत्तियों का पीला पड़कर झड़ना, फलियों का कम बनना तथा विरल या छिद्रयुक्त होना इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं। प्रारंभ में पत्तियों पर जलसंतृप्त बैंगनी रंग के धब्बे बनते हैं, जो बाद में बड़े होकर भूरे हो जाते हैं। फूल सूख जाते हैं और फलियों का निर्माण कम होता है।

प्रबंधन: रोकथाम के लिए मैंकोजेब 75 प्रतिशत डब्ल्यू.पी. 2 ग्राम प्रति लीटर पानी या जिंक मैंग्नीज कार्बामेट 2.0 ग्राम/हैक्टर अथवा थीरम 90 प्रतिशत 2 ग्राम/हैक्टर की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें।

धूसर फफूंद

लक्षण: चने में यह रोग बोट्राइटिस सिनेरेया नामक फफूंद से होता है। अनुकूल वातावरण में यह रोग फूल आने तथा फसल के पूर्ण विकसित होने की अवस्था में अधिक फैलता है। अधिक आर्द्रता की स्थिति में शाखाओं एवं तनों पर काले-भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं। पौधे गलने-सड़ने लगते हैं, फूल झड़ जाते हैं तथा संक्रमित पौधों पर फलियां नहीं बनती। फलियों में दाने नहीं बनते या सिकुड़े हुए बनते हैं।

प्रबंधन: इस रोग के नियंत्रण के लिए कार्बेण्डाजिम, मैंकोजेब, क्लोरोथेलोनिल या कैप्टॉन का 2 से 3 बार एक सप्ताह के अंतराल पर छिड़काव करें।

रस्ट रोग

लक्षण: चने की फसल में रस्ट रोग के लक्षण फरवरी-मार्च में दिखाई देते हैं। पत्तियों की ऊपरी सतह, टहनियों एवं फलियों पर हल्के भूरे-काले रंग के उभरे हुए चकत्ते बन जाते हैं।

प्रबंधन: इस रोग के नियंत्रण के लिए थायोफिनेट मिथाइल (70 प्रतिशत डब्ल्यू.पी.) 300 ग्राम या प्रोपिकोनाजोल (25 प्रतिशत ई.सी.) 200 मि.ली. या मैंकोजेब (75 प्रतिशत डब्ल्यू.पी.) 500 ग्राम प्रति एकड़ की दर से 200 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

फलीछेदक

लक्षण

यदि चने के खेत में चिड़ियां अधिक बैठने लगें, तो यह संकेत है कि फलीछेदक कीट का प्रकोप होने वाला है। फेरोमोन ट्रैप का उपयोग चने में फलीछेदक कीट के प्रकोप के समय की जानकारी प्राप्त करने के लिए किया जाता है। जब 5-6 नर फलीछेदक कीट फेरोमोन ट्रैप में फंस जाएं, उसी समय चने की फसल पर कीटनाशी दवाओं का छिड़काव कर देना चाहिए।

फेरोमोन ट्रैप ऐसा रसायन होता है, जिसमें मादा कीट द्वारा स्रावित हार्मोन जैसी गंध होती है, जो नर कीटों को आकर्षित करती है। इस प्रकार के रसायनों को यौन फेरोमोन ट्रैप कहा जाता है। फेरोमोन रसायन को सेप्टा (कैप्सूल) में भरकर यौन-जाल में लगाया जाता है। 20 फेरोमोन ट्रैप प्रति हैक्टर की दर से खेत में लगाने चाहिए।

प्रबंधन

फलीछेदक के नियंत्रण के लिए मोनोक्रोटोफॉस (36 ई.सी.)750 मि.ली.,या क्विनालफॉस (25 ई.सी.)1.50 लीटर,या इंडोक्साकार्ब 1.0 मि.ली. प्रति लीटर पानी या स्पाइनोसैड 45 प्रतिशत 0.2 मि.ली. प्रति लीटर पानी या इमामेक्टीन बेन्जोएट 5 प्रतिशत 0.4 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

इसके अतिरिक्त न्यूक्लियर पॉलीहेड्रोसिस वायरस (एन.पी.वी.) 250-350 एल.ई. +1.0 प्रतिशत टीनोपोल को 600 लीटर पानी प्रति हैक्टर में घोलकर फरवरी के अंतिम सप्ताह में छिड़काव करने से अच्छा नियंत्रण प्राप्त होता है।

चने में 5 प्रतिशत एन.एस.के.ई. (नीम बीज गिरी अर्क) या 3 प्रतिशत नीम का तेल या 2 प्रतिशत नीम पत्ती का अर्क का प्रयोग भी फलीछेदक नियंत्रण का प्रभावी विकल्प है। इसके अलावा बेसिलस थूरिंजिएन्सिस 1-1.5 ग्राम तथा ब्यूवेरिया बेसियाना 1.0 ग्राम प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करना भी लाभदायक पाया गया है।

राई-सरसों

कटाई: असिंचित क्षेत्रों में सरसों की कटाई का उपयुक्त समय फरवरी होता है। अधिक देर करने पर फलियां चटकने लगती हैं, जिससे उपज में हानि हो सकती है।

पौध संरक्षण

झुलसा या सफेद गेरुई रोग

लक्षण: सरसों की फसल में इस रोग के प्रभाव से पत्तियों की निचली सतह पर सफेद फफूंद की वृद्धि दिखाई देती है। प्रभावित पत्तियों पर हल्के भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं।

प्रबंधन: रोग के लक्षण दिखाई देने पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड, जीनेब, मैंकोजेब या केप्टाफॉल (फोलटॉफ) 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से 500-800 लीटर पानी प्रति हैक्टर में घोल बनाकर 10-12 दिनों के अंतराल पर दो छिड़काव अवश्य करें।

पेन्टेड बग कीट

लक्षण: सरसों की फसल में इस कीट का प्रकोप 4-5 पत्ती अवस्था तक अधिक रहता है। वयस्क कीट एवं उसके निम्फ पौधों के तने और पत्तियों से रस चूसते हैं, जिससे पत्तियां सफेद पड़ जाती हैं तथा बाद में मुरझाकर गिर जाती हैं।

प्रबंधन: इस कीट के प्रकोप होने पर 2 प्रतिशत मिथाइल पैराथियॉन या 5 प्रतिशत मैलाथियॉन का 20-25 ग्राम प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।

माहूं या चेंपा कीट

लक्षण: राई-सरसों की फसल में माहूं या चेंपा कीट पौधों के तने, फूलों एवं फलियों से रस चूसकर फसल को भारी नुकसान पहुंचाता है।

प्रबंधन: जब कीट का प्रकोप औसतन 25 कीट प्रति पौधा हो जाए, तब कीटनाशी जैसे मैलाथियॉन 50 ई.सी. 1250 मि.ली., फॉस्फोमिडान 85 डब्ल्यू.एस.सी. 250 मि.ली., थायोमिडान 25 ई.सी. 1000 मि.ली., मिथाइल डिमेटॉन 25 ई.सी. 500 मि.ली., डाइमेथोएट 30 ई.सी. 1000 मि.ली.या मोनोक्रोटोफॉस 35 एस.एल. 500-1000 ग्राम प्रति हैक्टर को 600-800 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

सूरजमुखी

बुआई: सूरजमुखी की खेती तीनों मौसम में की जा सकती है, फिर भी बुआई का समय इस प्रकार निर्धारित करना चाहिए कि फूल आने के समय लगातार बूंदा-बांदी, बादल छाए रहने या तापमान 38 डिग्री सेल्सियस से अधिक होने की स्थिति से बचा जा सके। सूरजमुखी की फसल 15 फरवरी तक लगाई जा सकती है।

सूरजमुखी की खेती अम्लीय एवं क्षारीय मृदा को छोड़कर सिंचित दशा वाली लगभग सभी प्रकार की मृदा में की जा सकती है, परंतु दोमट मृदा सर्वोत्तम मानी जाती है। जहां इसकी पारंपरिक खेती नहीं होती है, वहां

सूरजमुखी

इसकी बुआई बसंत ऋतु में जनवरी से फरवरी के अंत तक की जा सकती है।

बीज दर मृदा की दशा, दानों के आकार, अंकुरण प्रतिशत, बुआई का समय एवं बुआई की विधि पर निर्भर करती है। सिंचित फसल के लिए 4-5 ग्राम बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60 सें. मी., पौधे से पौधे की दूरी 30 सें.मी. तथा बीज की गहराई 4-5 सें.मी. उपयुक्त मानी जाती है।

किस्मों का चयन: सूरजमुखी की संकर प्रजातियां जैसे डी.आर.एस.एच.-1, के. बी.एस.एच.-44, पी.एस.एच.एफ.-118 तथा संकुल प्रजातियां जैसे मॉडर्न एवं सूर्या संस्तुत की गई हैं।

बीजजनित रोगों की रोकथाम के लिए बीज को 3 ग्राम प्रति ग्राम बीज की दर से कैप्टॉन या थीरम से उपचारित करना चाहिए।

पोषक तत्व प्रबंधन: उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करना उपयुक्त रहता है। सिंचित फसल के लिए 60:90:30 ग्राम प्रति हैक्टर नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश की संस्तुति की जाती है।

बुआई के समय नाइट्रोजन की 50 प्रतिशत मात्रा तथा फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा देनी चाहिए। शेष नाइट्रोजन को दो बराबर भागों में बांटकर बुआई के 30 एवं 55 दिनों बाद देना चाहिए। फॉस्फोरस की पूर्ति के लिए सिंगल सुपर फॉस्फेट का प्रयोग करना चाहिए, जिससे गंधक की आवश्यकता भी पूरी हो जाती है।

अंतर फसल प्रणाली: सूरजमुखी के साथ अंतर फसल प्रणाली अपनाना अधिक लाभदायक होता है। सूरजमुखी+तुअर (2:1/1:1/1:2), सूरजमुखी+मूंगफली (5:1/3:1) तथा सूरजमुखी+सोयाबीन (2:1) अनुपात में फसल बोना लाभकारी पाया गया है।

सब्जी फसलें

गोभीवर्गीय सब्जियां

गोभीवर्गीय सब्जियों में इस समय सिंचाई, गुड़ाई तथा पौधों पर मृदा चढ़ाने का कार्य करें। गोभी की फसल में पत्ती खाने वाले कीट की रोकथाम के लिए एमामेक्टिन बेंजोएट 5 एस.जी. 0.5 ग्राम/लीटर या फेनवैलरेट 20 ई.सी. 1 मि.ली./लीटर या क्विनालफॉस 25 ई.सी. 3 मि.ली./लीटर या स्पिनोसैड 45 एस.सी. 0.25 मि.ली./लीटर या बी.टी. 1 ग्राम/लीटर अथवा नीम बीज अर्क (4 प्रतिशत) पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

चारा फसलें

बरसीम व रिजका: बरसीम एवं रिजका की प्रत्येक कटाई के बाद 18-20 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें। इससे अगली कटाई शीघ्र प्राप्त होती है। बरसीम या अन्य हरे चारे की उपलब्धता पशुओं की आवश्यकता से अधिक होने पर उसे सुखाकर गर्मी के लिए भंडारित कर लेना चाहिए।

जई: जई की पहली कटाई बुआई के 55 दिनों बाद करें। कटाई के बाद सिंचाई करें तथा 20 ग्राम नाइट्रोजन प्रति हैक्टर की दूसरी टॉप ड्रेसिंग दें। इसके पश्चात 15-20 दिनों के अंतराल पर नियमित सिंचाई करते रहें।

मक्का (चारा): चारे हेतु मक्का की अफ्रीकन टॉल, गंगा-2 एवं विजय प्रजातियों के लिए 40 ग्राम बीज प्रति हैक्टर की दर से बुआई करें। एम.पी. चरी, पूसा चरी-23 एवं पायनियर संकर चरी के लिए 25 ग्राम बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। गर्मी में चारे के लिए मक्का की बुआई इस माह के दूसरे पखवाड़े से प्रारंभ की जा सकती है।

लोबिया: लोबिया की रसियन जाइंट एवं यू.पी.सी.-5286 प्रजातियों के लिए 35 ग्राम बीज प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करना चाहिए। गर्मी में चारा उत्पादन के लिए इसकी बुआई भी माह के दूसरे पखवाड़े से की जा सकती है।

बहुवर्षीय घास: खेत में या मेड़ों पर बहुवर्षीय घासें जैसे-नेपियर, गिनी एवं सिटेरिया की रोपाई की जा सकती है। रोपाई के समय 100 क्विंटल गोबर की खाद, 60 ग्राम नाइट्रोजन तथा 60 ग्राम फॉस्फोरस प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करना चाहिए।

पत्तागोभी

फूलगोभी जब उचित आकार की हो जाए, तब उसकी कटाई करें। पत्तागोभी की फसल में अवांछित पौधों को निकाल दें। माहूं कीट के शिशु एवं वयस्क दोनों ही पत्तियों से रस चूसते हैं। इससे पत्ते टेढ़े-मेढ़े हो जाते हैं तथा अधिक प्रकोप की स्थिति में फूल नहीं बनते। इसके नियंत्रण के लिए इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. 0.33 मि.ली./लीटर या मेटासिस्टॉक्स 25 ई.सी. 1.5 मि.ली./लीटर या डाइमेथोएट 30 ई.सी. 2 मि.ली./लीटर या क्विनालफॉस 25 ई.सी. 2 मि.ली./लीटर में से किसी एक रसायन का पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। अधिक ग्रसित पत्तियों को निकालकर नष्ट कर दें।

टमाटर

ग्रीष्मकालीन टमाटर की रोपाई फरवरी में की जाती है, जिसकी नर्सरी नवंबर में तैयार की गई हो। फसल में रोपाई के 25-30 दिनों बाद उन्नत किस्मों के लिए प्रति हैक्टर 40 ग्राम नाइट्रोजन (लगभग 88 ग्राम यूरिया) तथा संकर एवं असीमित बढ़वार वाली किस्मों के लिए 50-60 ग्राम नाइट्रोजन (लगभग 120-130 ग्राम यूरिया) की प्रथम टॉप ड्रेसिंग करें। पछेती झुलसा रोग तथा माहूं कीट से बचाव के लिए मैंकोजेब 0.2 प्रतिशत (2 ग्राम/लीटर पानी)के साथ मोनोक्रोटोफॉस 0.04 प्रतिशत (4 मि.ली./10 लीटर पानी) के घोल का छिड़काव करें।

सब्जी मटर

सब्जी मटर में फलियां बनते समय खेत में हल्की नमी बनाए रखना आवश्यक होता है। फसल में चूर्णिल आसिता रोग के प्रकोप से पौधों की पत्तियां, तने, शाखाएं एवं फलियां बुकनी जैसे पदार्थ से ढक जाती हैं। इसकी रोकथाम के लिए सल्फरयुक्त रसायन जैसे-हेक्साकॉनाजोल (हेक्सॉल), एलोसॉल, सल्फेक्स 2.0 ग्राम/लीटर अथवा कैरेथेन 1 मि.ली./लीटर पानी में मिलाकर रोग

सब्जी मटर

दिखाई देने पर छिड़काव करें तथा 15 दिनों के अंतराल पर आवश्यकतानुसार दोहराएं।

हरी फलियां जब पूर्ण रूप से भरी हुई अवस्था में हों तथा उनका रंग गहरे हरे से हल्का हरा होने लगे, तब उनकी तुड़ाई करें।

आलू

आलू के पत्तों को खुदाई से एक सप्ताह पूर्व दबा देने से कंदों का छिलका मजबूत हो जाता है। खुदाई के बाद आलू को छाया में ढेर लगाकर सुखाएं, ऊपर से मृदा साफ करें तथा बिना कटे कंदों को बोरियों में भरकर शीत भंडार में भेजने की व्यवस्था करें।

आलू की फसल में पछेती झुलसा रोग दिखाई देने पर इंडोफिल एम-45 का 0.2 प्रतिशत घोल बनाकर खड़ी फसल पर अच्छी तरह छिड़काव करें। सफेद सूंडी का प्रकोप मुख्य रूप से पहाड़ी क्षेत्रों में पाया जाता है तथा देर से खुदाई की गई फसल में अधिक नुकसान होता है। इसके नियंत्रण के लिए क्लोरोपाइरीफॉस 20 ई.सी. 2.5 मि.ली./लीटर पानी में घोल बनाकर मानसून के तुरंत बाद छिड़काव करें।

मिट्टी चढ़ाते समय पौधों के पास फोरेट 10 प्रतिशत या कार्बोफ्यूरॉन 3 प्रतिशत कीटनाशी 2.5-3.0 ग्राम/हैक्टर की दर से प्रयोग करें।

आलू, मिर्च एवं टमाटर

फसलों को पछेता झुलसा रोग तथा माहूं कीट से बचाने के लिए मैंकोजेब 0.2 प्रतिशत

आलू

(2 ग्राम/लीटर पानी) के साथ मोनोक्रोटोफॉस 0.04 प्रतिशत (4 मि.ली./10 लीटर पानी) के घोल का छिड़काव करें।

शिमला मिर्च

फसल में निराई-गुड़ाई करें तथा खड़ी फसल में 50 ग्राम यूरिया/हैक्टर की दर से प्रयोग करें। रोगों एवं कीटों से बचाव के लिए इंडोफिल एम-45 का 0.2 प्रतिशत घोल बनाकर एक छिड़काव अवश्य करें।

लेट्यूस

फरवरी में लेट्यूस की फसल के लिए विशेष देखभाल आवश्यक होती है। यह ठंडे एवं हल्के मौसम में बेहतर वृद्धि करता है। इस समय नियमित सिंचाई करें, ताकि मृदा में नमी बनी रहे, परंतु जलभराव से बचें। कटाई योग्य अवस्था में फसल को सावधानीपूर्वक काटें, जिससे गुणवत्ता बनी रहे।

गाजर, शलजम एवं मूली

बीज वाली फसल में 50 ग्राम यूरिया/हैक्टर की दर से प्रयोग कर हल्की सिंचाई करें तथा मेटासिस्टॉक्स 0.15 प्रतिशत घोल का एक छिड़काव अवश्य करें। सामान्य फसल में तैयार जड़ों की खुदाई करें।

गाजर

पालक, मेथी एवं धनिया

सब्जी वाली फसल में पत्तियों की कटाई कर तुरंत गट्ठियां बांधकर बाजार भेजने की व्यवस्था करें। बीज वाली फसल से अवांछित पौधों को निकालें तथा निराई-गुड़ाई करें। कीट नियंत्रण के लिए रोगोर 0.2 प्रतिशत घोल का एक छिड़काव अवश्य करें।

पालक

प्याज

प्याज की फसल में नाइट्रोजन की

प्याज

संस्तुत मात्रा 100 ग्राम/हैक्टर का एक-तिहाई भाग (72 ग्राम यूरिया) रोपाई के 30 दिनों बाद सिंचाई के साथ टॉप ड्रेसिंग के रूप में दें। आवश्यकतानुसार समय पर निराई-गुड़ाई करें। रासायनिक खरपतवार नियंत्रण हेतु स्टॉम्प 3.0-5.0 लीटर/हैक्टर की दर से रोपाई के बाद सिंचाई से पहले छिड़काव करें।

प्याज में नील लोहित धब्बा (पर्पल ब्लॉच) रोग के कारण पत्तियों पर मध्य भाग से बैंगनी रंग के धब्बे बन जाते हैं। इसके नियंत्रण हेतु ब्लाइटॉक्स-50 (2.0 ग्राम/लीटर पानी) या डायथेन एम-45 या मैंकोजेब 0.2 प्रतिशत का आवश्यकतानुसार 10 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें। थ्रिप्स कीट के प्रकोप पर फॉस्फेमिडान 0.6 प्रतिशत घोल बनाकर छिड़काव करें।

लहसुन

यदि लहसुन की फसल में नाइट्रोजन की दूसरी टॉप ड्रेसिंग नहीं की गई हो, तो 75 ग्राम यूरिया/हैक्टर की दर से बुआई के 60 दिनों बाद डालकर सिंचाई करें। रोग एवं कीट नियंत्रण हेतु मैंकोजेब 2 ग्राम/लीटर तथा फॉस्फेमिडान 0.6 मि.ली./लीटर पानी में घोल बनाकर एक सुरक्षात्मक छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार भूमि में नमी कम होने पर हल्की सिंचाई करें।

लहसुन

लोबिया

गर्मी के मौसम में लोबिया की बुआई फरवरी-मार्च में की जाती है। उन्नत किस्मों में काशी गौरी, काशी कंचन, पूसा कोमल (बैक्टीरियल ब्लाइट प्रतिरोधी), पूसा सुकोमल (मोजैक वायरस प्रतिरोधी), अर्का गरिमा, लोबिया 263 एवं पूसा फागुनी फसली प्रमुख हैं। साधारणत: 20-25 ग्राम बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है, लेकिन बीज की मात्रा प्रजाति और मौसम पर निर्भर करती है। बेलदार प्रजातियों के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 80-90 सें.मी. , झाड़ीदार प्रजातियों के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45-60 सें.मी. और पौधे से पौधे की दूरी 10-15 सें.मी. रखी जाती है। बुआई से पहले बीज को राइजोबियम कल्चर से उपचारित करना चाहिए। अच्छी फसल के लिए 40 ग्राम नाइट्रोजन, 60 ग्राम फॉस्फोरस और 50 ग्राम पोटाश प्रति हैक्टर खेत में अंतिम जुताई के समय मृदा में मिला देना चाहिए। फूल आने पर 20 ग्राम नाइट्रोजन फसल में प्रयोग करें। लोबिया की नरम और कच्ची फलियों की तुड़ाई 4-5 दिनों के अंतराल में करें। बेलदार प्रजातियों में 8-10 तुड़ाई और झाड़ीदार प्रजातियों में 3-4 तुड़ाई की जा सकती है।

सेम

बसंत ऋतु में सेम की बुआई फरवरी में की जाती है। बेलदार प्रजातियों में पूसा सेम-2, पूसा सेम-3, एच.डी.-18, रजनी तथा झाड़ीदार प्रजातियों में अर्का विजय, अर्का सौम्या, अर्का जय उपयुक्त हैं।

बेलदार प्रजातियों के लिए 10 ग्राम बीज/हैक्टर तथा झाड़ीदार प्रजातियों के लिए 30-40 ग्राम बीज/हैक्टर पर्याप्त होता है। बेलदार प्रजातियों में पंक्ति से पंक्ति दूरी 1.0-1.5 मीटर तथा पौधे से पौधे की दूरी 90 सें.मी. रखें। झाड़ीदार प्रजातियों में पंक्ति से पंक्ति दूरी 60 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 15-20 सें.मी. उपयुक्त रहती है। फसल में 10-12 दिनों के अंतराल पर हल्की सिंचाई करें। एक-दो बार निराई करें अथवा रासायनिक खरपतवार नियंत्रण हेतु स्टॉम्प 3 लीटर/हैक्टर की दर से प्रयोग करें।

ग्रीष्मकालीन चौलाई

चौलाई की बुआई हेतु 2-3 ग्राम/हैक्टर बीज को रेत में मिलाकर छिड़काव विधि से बोएं अथवा 20-25 सें.मी. कतार दूरी पर पंक्ति में बुआई करें। बुआई के समय 50 ग्राम नाइट्रोजन, 50 ग्राम फॉस्फोरस एवं 30 ग्राम पोटाश/हैक्टर की दर से उर्वरक का प्रयोग करें।

करेला एवं तोरई

इन फसलों की बुआई 40 सें.मी. चौड़ी नालियों के दोनों मेड़ों पर 2.5-3.0 मीटर की दूरी पर करें। करेला की प्रमुख किस्में पूसा दो मौसमी, पूसा विशेष, पूसा हाइब्रिड-2, कल्याणपुर बारहमासी, कल्याणपुर सोना, फैजाबादी बारहमासी एवं कोयम्बटूर लौंग हैं।

करेला

चिकनी तोरई की प्रमुख किस्में पंजाब सदाबहार, कल्याणपुर चिकनी, पूसा सुप्रिया, पूसा चिकनी, पूसा स्नेहा तथा धारीदार तोरई की पूसा नसदार, सतपुतिया, पूसा नूतन एवं को.-1 हैं।

करेला के लिए 6-7 ग्राम बीज/हैक्टर तथा तोरई के लिए 5-5.5 ग्राम बीज/हैक्टर पर्याप्त होता है।

लौकी

बसंत-ग्रीष्म ऋतु में लौकी की बुआइ फरवरी-मार्च में करें। उन्नत किस्मों में पूसा नवीन, पूसा संतुष्टि, पूसा संदेश, पूसा मंजरी, पूसा समर प्रोलीफिक लौंग, आजाद हरित, पूसा समृद्धि, पी.एस.पी.एल., मेघदूत एवं पूसा हाइब्रिड-3 प्रमुख हैं।

लौकी की बुआई 3.0×0.75 मीटर की दूरी पर करें। इसके लिए 4-5 ग्राम बीज/

लौकी

हैक्टर पर्याप्त होता है।8 0-100 सें.मी. चौड़ी नालियां बनाकर दोनों मेड़ों पर प्रति स्थान दो बीज बोएं। बुआई के समय 80 ग्राम नाइट्रोजन, 50 ग्राम फॉस्फोरस तथा 50 ग्राम पोटाश/हैक्टर की संस्तुति की जाती है।

भिंडी

भिंडी की बुआई फरवरी के अंतिम सप्ताह से मार्च तक करें। 8 ग्राम बीज/हैक्टर को बुआई से पहले 0.07 प्रतिशत बाविस्टीन घोल में 12 घंटे भिगोकर उपचारित करें। इसके बाद 30 सें.मी. पंक्ति दूरी एवं 15 सें.मी. पौधा दूरी पर बुआई करें।

भिंडी

खेत की तैयारी के समय 10 टन सड़ी गोबर खाद के साथ 25 ग्राम यूरिया, 76 ग्राम सिंगल सुपर फॉस्फेट तथा 25 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश/हैक्टर की दर से प्रयोग करें। प्रमुख उन्नत किस्में काशी लालिमा (लाल-बैंगनी फल), पूसा ए-4, पूसा ए-5, पूसा मखमली, पूसा सावनी एवं परकिन लॉन्ग ग्रीन हैं।

कुम्हड़ा/कद्दू

इनकी बुआई 3×0.75 मीटर की दूरी पर 80-100 सें.मी. चौड़ी नाली बनाकर दोनों मेड़ों पर 3-4 ग्राम/हैक्टर बीज करें। कुम्हड़ा/कद्दू की प्रमुख प्रजातियां पूसा विकास, पूसा विश्वास, पूसा हाइब्रिड-1, अर्का सूर्यमुखी, पूसा अलंकार एवं अर्का चन्दन हैं। चप्पन कद्दू की प्रमुख प्रजातियां प्रोलिफिक, ऑस्ट्रेलियन ग्रीन, पैटी पेन, पूसा अलंकार और अर्ली येलो हैं। चप्पन कद्दू के लिए 5-6 ग्राम/हैक्टर बीज की आवश्यकता होती है।

खीरा

जायद के लिए खीरे का बीज दर 2-2.5 ग्राम/हैक्टर पर्याप्त होता है। खीरे की बुआई 1.5-2×0.50 मीटर पर 30 सें.मी. चौड़ी नाली बनाकर उसकी दोनों मेड़ों पर करें। प्रमुख प्रजातियां के.एच. 3, पोइंसेट, जापानीज, पूसा संयोग, खीरा-75, जापानी लौंग ग्रीन, प्रिया और पूसा उदय हैं। खीरे के लिए प्रति हैक्टर 60 ग्राम नाइट्रोजन, 40 ग्राम फॉस्फोरस और 40 ग्राम पोटाश प्रयोग करें।

खीरा

टिंडा एवं ककड़ी

बीज की बुआई 2 मीटर की दूरी पर 30-40 सें.मी. चौड़ी नाली बनाकर दोनों मेड़ों पर 40-45 सें.मी. की दूरी पर करें। टिंडा के लिए 6-7 ग्राम और ककड़ी के लिए 2-3 ग्राम/हैक्टर बीज पर्याप्त होता है। प्रमुख टिंडा प्रजातियां पंजाब टिंडा, अर्का टिंडा, एस.-48, हिसार सलेक्शन, पंजाब चमन और बीकानेरी ग्रीन हैं। ककड़ी की प्रमुख प्रजातियां लखनऊ अर्की, कल्याणपुर टाइप, रजनी और करनाल सलेक्शन हैं।

टिंडा

तरबूज

तरबूज की प्रजातियां जैसे अर्का मणिक, शुगर बेबी और स्थानीय किस्मों का प्रति हैक्टर 4-5 ग्राम बीज पर्याप्त होता है। बुआई 2.5×0.50 मीटर की दूरी पर 40-50 सें.मी. चौड़ी नाली बनाकर मेड़ों के दोनों तरफ करें।

खरबूजा

खरबूजा की बुआई 1.5-2.0×0.50 मीटर की दूरी पर 30 सें.मी. चौड़ी नाली बनाकर दोनों मेड़ों पर 2.5-3.0 ग्राम/हैक्टर बीज की दर से करें। प्रमुख प्रजातियां पूसा मधुरस, पूसा शरबती, हरा मधु, लखनऊ बट्टी, पंजाब हाइब्रिड, पंजाब सुनहरा और पंजाब अनमोल हैं।

पॉलीहाउस में सब्जी प्रबंधन

प्राकृतिक वायु संवहक पॉलीहाउस तकनीक की संरचना में उच्च गुणवत्ता और उच्च बाजार भाव वाली सब्जियों जैसे-टमाटर, शिमला मिर्च, बीज रहित खीरा तथा गुलाब, गुलदाउदी और जरबैरा जैसी पुष्प फसलों को आसानी से उगाया जा सकता है।

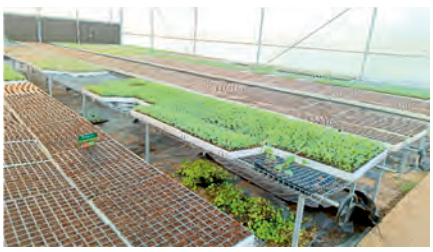

पॉलीहाउस में नर्सरी प्रबंधन

जनवरी/फरवरी में पॉलीहाउस के अंदर बैंगन, टमाटर, मिर्च आदि की नर्सरी तैयार करें और फरवरी के मध्य खेत में रोपाई शाम के समय करें। रोपाई के तुरंत बाद सिंचाई आवश्यक है। पंक्ति से पंक्ति तथा पौधे से पौधे की दूरी 75×60 सें.मी. रखें। कम बढ़वार वाली किस्मों के लिए 60×45 या 60×60 सें.मी. दूरी पर्याप्त है। खेत की तैयारी के समय सड़ी हुई गोबर की खाद डालें।

आम

कई क्षेत्रों में फरवरी में आम के वृक्षों में मंजर आने लगते हैं। इस समय मौसम में बदलाव के कारण कई तरह के कीट एवं रोगों का भी प्रकोप होता है। इनका नियंत्रण समय से नहीं करने पर भारी नुकसान हो सकता है।

आम में भुनगा कीट (मैंगो हॉपर) पत्तियों तथा पुष्पक्रमों से रस चूसते हैं

आम की उन्नत प्रजाति

और फल गिरने लगते हैं। इसकी रोकथाम के लिए कार्बोरिल (2 मि.ली./लीटर पानी), क्लोरोपाइरीफॉस (5 मि.ली/लीटर पानी) या मोनोक्रोटोफॉस 10 मि.ली. को 10 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें या फॉस्फेमिडान 0.6 मि.ली./लीटर पानी की दर से 15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें।

आम में पाउडरी मिल्ड्यू (चूर्णिल आसिता) की रोकथाम के लिए 250 ग्राम कैराथेन को 500 लीटर पानी में या ट्राइडेमेफॉन 0.1 प्रतिशत (1 मि.ली./लीटर), डाइनोकेप 0.1 प्रतिशत (1 मि.ली./लीटर) या गंधक (500 ग्राम/पौधा) चूर्ण का प्रयोग करना चाहिए। डायानोकेप (1 मि.ली./लीटर पानी) का छिड़काव भी फरवरी-मार्च में 15 दिनों के अंतराल पर किया जा सकता है।

अमरूद

फरवरी के मौसम में अमरूद के पेड़ में छंटाई करनी चाहिए और ठंड से बचाने के उपाय करने चाहिए।

- एक वर्ष के पौधे के लिए 10 ग्राम कम्पोस्ट या गोबर खाद, 30 ग्राम नाइट्रोजन एवं फॉस्फोरस तथा 60 ग्राम पोटाश की आवश्यकता होती है।
- 6 वर्ष या उससे अधिक उम्र के पौधों के लिए क्रमशः 10 ग्राम कम्पोस्ट/गोबर खाद, 180 ग्राम नाइट्रोजन एवं फॉस्फोरस तथा 360 ग्राम पोटाश आवश्यक होता है।
- अमरूद की फसल में एंथ्रोक्नोज रोग की रोकथाम के लिए ब्लाइटॉक्स (2 ग्राम/लीटर) का 20 दिनों के अंतराल पर 2-3 बार छिड़काव करना चाहिए।

डाली से लदे अमरूद

अंगूर

- पौधशाला में अंगूर की स्वस्थ कलम 75×75 सें.मी. चौड़े तथा गहरे गड्ढों में 1:1 गोबर की खाद तथा मृदा के मिश्रण भरने के बाद जनवरी-फरवरी में लगानी चाहिए। अंगूर की श्यामव्रण रोग की रोकथाम के लिए ब्लाइटॉक्स-50 दवा का छिड़काव करें।

अंगूर

- अंगूर के बाग में यदि जनवरी में खाद एवं उर्वरक नहीं दिया गए हो, तो फरवरी में प्रति पौधे की दर से प्रथम वर्ष 10 ग्राम कम्पोस्ट/गोबर खाद के अलावा 100 ग्राम नाइट्रोजन, 60 ग्राम फॉस्फोरस एवं 80 ग्राम पोटाश का प्रयोग करें। पांच वर्ष या उससे ऊपर की पौधों में यह मात्रा बढ़ाकर 500 ग्राम नाइट्रोजन, 300 ग्राम फॉस्फोरस एवं 400 ग्राम पोटाश का प्रयोग करें।

नीबू

- मूलवृंत तैयार करने हेतु पौधशाला में बीजों की बुआई करें। फलदार बागों में नाइट्रोजन एवं पोटाश वाली उर्वरकों का प्रयोग करके गुड़ाई करें। लेमन की कलमों की रोपाई पौधशाला में करें।
- नीबू के एक वर्ष के पौधे के लिए 10 ग्राम कम्पोस्ट/गोबर खाद, 25 ग्राम नाइट्रोजन, 50 ग्राम फॉस्फोरस एवं 25 ग्राम पोटाश का प्रयोग करें। या उससे अधिक उम्र के पौधों के लिए यह मात्रा बढ़ाकर क्रमशः 90-100 ग्राम कम्पोस्ट/गोबर की खाद, 250 ग्राम नाइट्रोजन, 500 ग्राम फॉस्फोरस व 250 ग्राम पोटाश का प्रयोग करें।

बेर

फरवरी में बेर के बागानों में कई महत्वपूर्ण कार्य किए जाते हैं। यह समय बेर के फल के पकने और उसकी उपज लेने का होता है। इस महीने में सबसे मुख्य कार्य फल तोड़ने का होता है। पूरी तरह से पके हुए बेर को तोड़कर बाजार में बेचने या संग्रहित करने के लिए तैयार किया जाता है। इसके साथ ही बागानों की सफाई पर विशेष ध्यान दिया जाता है। पेड़ों के नीचे गिरे हुए पत्तों और खराब फलों को हटाया जाता है, ताकि कीट और रोग न फैलें। इस समय फलों पर असर डालने वाले कीटों, जैसे फ्रूट फ्लाई और रोगों का निरीक्षण किया जाता है। जरूरत पड़ने पर दवाओं का छिड़काव किया जाता है। फलछेदक कीट की रोकथाम के लिए मैलाथियॉन 0.5 प्रतिशत का छिड़काव करें।

पपीता

- पिछले मौसम में लगाये गये पपीता के पौधों में नाइट्रोजनयुक्त उर्वरकों का प्रयोग करके गुड़ाई करने के बाद एक सिंचाई कर दें।

केला

- केले के बगीचों से सूखी पत्तियां निकाल कर साफ-सफाई करें। इस

माह के अन्त तक नाइट्रोजन व पोटाश वाली उर्वरकों का प्रयोग करके गुड़ाई कर दें। माहूं की रोकथाम के लिए क्विनालफॉस (25 ई.सी.) 1.0 लीटर/हैक्टर की दर से छिड़काव करें।

उर्वरक प्रयोग

फलवृक्षों में उर्वरक देने के लिए वृक्ष के मुख्य तने से 1-2 मीटर की दूरी पर लगभग 30 सें.मी. चौड़ी एवं 15-20 सें.मी. गहरी नाली बनाकर उसमें उर्वरकों का मिश्रण छिड़क दें। ऊपर से मृदा से ढकने के बाद 10-15 सें.मी. सिंचाई करें।

लीची

एक वर्ष के पौधे में 5 ग्राम कम्पोस्ट/गोबर खाद, 50 ग्राम नाइट्रोजन, 25 ग्राम फॉस्फोरस एवं 25 ग्राम पोटाश की मात्रा दें। इसे क्रमशः बढ़ाकर 10 वर्ष अथवा उससे अधिक आयु के पौधे में 50 ग्राम कम्पोस्ट/गोबर खाद, 250 ग्राम नाइट्रोजन एवं फॉस्फोरस एवं 500 ग्राम पोटाश का प्रयोग करें।

लीची

कटहल

फलदार बागों में नाइट्रोजनधारी व पोटाश उर्वरकों का प्रयोग करें। पत्ती के काले धब्बे की रोकथाम के लिए ब्लाइटॉक्स-50 के घोल का छिड़काव करें।

आड़ू

फसल में माहूं की रोकथाम के लिए ऑक्सीडिमेटॉन मिथाइल 25 ई.सी. (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव 15 दिनों के अन्तराल पर करें।

आड़ू

पुष्प एवं सगंधीय पौधे

रजनीगन्धा

बल्बों के रोपण से 10-15 दिनों पूर्व क्यारियों में 45 सें.मी. गहरी खुदाई करके 10 ग्राम गोबर या कम्पोस्ट खाद प्रति वर्ग मीटर तथा सिंगल सुपर फॉस्फेट व पोटाश प्रत्येक 80-100 ग्राम प्रति वर्ग मीटर की दर से बेसल ड्रेसिंग करें।

रजनीगंधा

ग्लैडियोलस

मुरझाई हुई टहनियों को निकाल दें तथा स्पाइक के नीचे के फूल थोड़ा खिलने के बाद डंठल को काटकर विपणन हेतु भेजें। आवश्यकतानुसार सिंचाई व निराई-गुड़ाई करें।

ग्लैडियोलस

गुलदाउदी

पुराने और मुरझाए हुए फूलों और शाखाओं को काट दें। नए अंकुर को बढ़ने के लिए स्थान दें, जिससे पौधा स्वस्थ रहता है। सकर्स को अलग करके गमलों में लगा दें।

गुलाब

कैलेंडुला

हल्की जलवायु में कैलेंडुला देर से पतझड़ से लेकर वसंत तक और ठंडे क्षेत्रों में वसंत से पतझड़ तक खिलता है। रोपण के समय प्रत्येक पौधे को लगभग 8-12 इंच की दूरी पर रखें और पंक्तियों के बीच 18 इंच की दूरी रखें, जिससे बेहतर वायु प्रवाह को बढ़ावा मिलेगा।

कैलेंडुला

गेंदा

गेंदा एक बारहमासी फसल है, जिसे वर्षभर उगाया जा सकता है। गर्मियों में बुआई जनवरी-फरवरी और रोपाई फरवरी-मार्च में होती है, जिससे मई-जुलाई में फूल खिलते हैं। तापमान अधिक होने से फूल छोटे होते हैं, लेकिन मांग अधिक होने से मुनाफा अच्छा होता है।

गुलदाउदी

गुलाब

सूखे फूलों व अनावश्यक अंकुरों को तोड़ दें, नये पौधे लगाना तथा बडिंग का कार्य करें। बसंतकालीन बहार के लिए घुली हुई खाद दें। आवश्यकतानुसार सिंचाई व निराई-गुड़ाई करें। माहूं की रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफॉस 0.04 प्रतिशत (1 मि.ली./लीटर) का घोल बनाकर छिड़काव करें।

गेंदा

गर्मी के फूल

जीनिया, सनफ्लावर, पोर्चूलाका व कोचिया के बीजों को नर्सरी में बोयें।

लोकाट

फसल में फलछेदक कीट की रोकथाम के लिए मैलाथियॉन 0.2 प्रतिशत व ब्लाइटॉक्स-50 (0.25 प्रतिशत) के घोल का छिड़काव करें।

आंवला

फरवरी में आंवला की खेती में विशेष कार्य किए जाते हैं, जो पौधों की देखभाल और अच्छे उत्पादन के लिए आवश्यक होते हैं। इस समय पौधों की काट-छांट की जाती है, जिसमें सूखी और पुरानी शाखाओं को हटाया जाता है, ताकि नए अंकुर और पत्ते उग सकें। पौधों को सही पोषण देने के लिए खाद और पोषक तत्वों का प्रयोग किया जाता है। इसमें जैविक खाद, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और जिंक व बोरॉन जैसे सूक्ष्म पोषक तत्व शामिल हैं। सिंचाई का ध्यान रखा जाता है, क्योंकि इस महीने की ठंडी और शुष्क जलवायु में मृदा को नमी की जरूरत होती है। रोग और कीट नियंत्रण के लिए नीम का तेल या अन्य उपयुक्त कीटनाशकों का छिड़काव किया जाता है। नए व फलदार वृक्षों में नाइट्रोजनधारी व पोटाश उर्वरकों का प्रयोग करके गुड़ाई कर दें।

सिंचाई और अन्तर फसल प्रणाली

सिंचाई की सुविधा होने पर आम, अमरूद, आंवला, कटहल, लीची व पपीता के बाग का रोपण करें। फलों के नए व पुराने बागानों में अन्तर सस्य के रूप में लोबिया, मिर्च, टमाटर व भिंडी आदि की बुआई/रोपाई अवश्य करें। ■

श्री अन्न व्यंजनों के आगे फीका पड़ता जंक फूड

भारतीय खानपान में एक बार फिर पारंपरिक स्वाद और पोषण की सशक्त वापसी देखने को मिल रही है। लंबे समय तक फास्ट फूड और विदेशी व्यंजनों के प्रभाव में रही शहरी थाली अब देसी, सादा और स्वास्थ्यवर्धक विकल्पों की ओर लौटती दिखाई दे रही है। इस बदलाव में पहाड़ी क्षेत्रों के श्री अन्न जैसे कोदो, मंडुआ, झंगोरा और भट्ट महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। कभी सीमांत किसानों की साधारण फसल माने जाने वाले ये अनाज आज सेहत, स्वाद और सतत कृषि के प्रतीक बन चुके हैं।

उत्तराखंड और हिमाचल प्रदेश के पारंपरिक व्यंजन जैसे कोदो की रोटी, भट्ट के डुबके, काफली और चैंसू अब केवल स्थानीय आहार तक सीमित नहीं रहे। ऑनलाइन फूड डिलीवरी प्लेटफॉर्म और होटल रेस्टोरेंट्स के माध्यम से इनकी मांग महानगरों तक तेजी से बढ़ रही है। यह बदलाव केवल उपभोक्ताओं की बदलती खाद्य पसंद को नहीं दर्शाता, बल्कि पर्वतीय कृषि, किसानों की आय और पोषण सुरक्षा के लिए भी नई संभावनाओं के द्वार खोलता है।

उत्तराखंड के पारंपरिक श्री अन्न से बने व्यंजन अब लोगों की पहली पसंद बनते जा रहे हैं। कोदो की गर्म रोटी, भट्ट के डुबके की सौंधी खुशबू और मंडुआ से बनी रोटी पर पिघलता मक्खन, फ्राइड राइस और मंचूरियन लोकप्रिय चीनी व्यंजन पर भारी पड़ने लगे हैं। एक ऑनलाइन फूड डिलीवरी कंपनी के ताजा सर्वे के अनुसार, बीते वर्ष की तुलना में पहाड़ी अनाज से बने व्यंजनों के ऑर्डर में इस बार आठ गुना तक की बढ़ोतरी दर्ज की गई है। यह बदलाव केवल स्वाद का नहीं, बल्कि सेहत के प्रति बढ़ती जागरूकता का भी संकेत है।

सर्वे रिपोर्ट के अनुसार, वर्ष 2024-25 के दौरान क्षेत्रीय भारतीय व्यंजनों की मांग में 72 प्रतिशत तक का उछाल आया है। खासतौर पर हिमाचल और उत्तराखंड के हिमालयी स्वाद ने मेट्रो शहरों के उपभोक्ताओं को आकर्षित किया है। अब लोग केवल पेट भरने के लिए नहीं, बल्कि पोषण और स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर आहार का चयन कर रहे हैं। इसी कारण कोदो, मंडुआ, झंगोरा और भट्ट जैसे श्री अन्न उत्पादों का महत्व लगातार बढ़ता जा रहा है।

हेल्थ बूस्टर श्री अन्न का बढ़ता महत्व

यह बदलाव केवल पहाड़ी राज्यों तक सीमित नहीं है। बिहार का लिट्टी-चोखा भी शहरी उपभोक्ताओं की पसंदीदा सूची में तेजी से ऊपर चढ़ा है। बीते एक वर्ष में इसकी मांग में छह गुना तक की वृद्धि दर्ज की गई है। विशेषज्ञों का मानना है कि कोरोना काल के बाद लोगों में इम्यूनिटी और संतुलित आहार को लेकर जागरूकता बढ़ी है, जिसका सीधा असर खानपान की आदतों पर पड़ा है।

होटल और रेस्टोरेंट उद्योग में भी इस बदलाव की स्पष्ट झलक दिखाई दे रही है। पहाड़ी आहार को मेन्यू में शामिल करने वाले रेस्टोरेंट्स की संख्या लगातार बढ़ रही है। अब आहार का चयन केवल स्वाद के आधार पर नहीं, बल्कि उसके पोषण मूल्य और स्वास्थ्य लाभों को ध्यान में रखकर किया जा रहा है। एंटीऑक्सीडेंट और फाइबर से भरपूर कोदो, मंडुआ और भट्ट से बने व्यंजन शहरी उपभोक्ताओं की पसंद में तेजी से जगह बना रहे हैं।

परंपरागत व्यंजन जैसे-उत्तराखंड की काफली, चैंसू और भट्ट के डुबके तथा हिमाचल का सिड्डू अब केवल स्थानीय मेलों या गांवों तक सीमित नहीं हैं। ऑनलाइन प्लेटफॉर्म और आधुनिक रेस्टोरेंट्स के माध्यम से ये व्यंजन देश के कोने-कोने तक पहुंच रहे हैं। इससे न केवल उपभोक्ताओं को सेहतमंद विकल्प मिल रहा है, बल्कि स्थानीय किसानों, महिला समूहों और लघु उत्पादकों के लिए भी नए बाजार खुल रहे हैं।

खाद्य विशेषज्ञों का मानना है कि यह ट्रेंड आने वाले वर्षों में और मजबूत होगा। सरकार द्वारा श्री अन्न को बढ़ावा देने, 'इंटरनेशनल ईयर ऑफ मिलेट्स' जैसे अभियानों और बढ़ती स्वास्थ्य चेतना ने इस बदलाव को गति दी है। खास बात यह है कि युवा पीढ़ी भी अब पारंपरिक स्वादों को अपनाने लगी है।

कुल मिलाकर, कोदो की रोटी और भट्ट के डुबके की यह वापसी केवल एक फूड ट्रेंड नहीं, बल्कि बदलती जीवनशैली और सोच का प्रतीक है। स्वाद, सेहत और संस्कृति का यह संगम बताता है कि भारतीय थाली एक बार फिर अपनी जड़ों की ओर लौट रही है। ■

हिमालयी श्री अन्न

स्वास्थ्य विशेषज्ञों के अनुसार, हिमालयी श्री अन्न फाइबर, आयरन, कैल्शियम और एंटीऑक्सीडेंट्स से भरपूर होते हैं। ये मधुमेह, हृदय रोग और पाचन संबंधी समस्याओं में लाभकारी माने जाते हैं। इसके विपरीत, पिज्जा, बर्गर और मंचूरियन जैसे जंक फूड में मैदा, कॉर्न स्टार्च और ट्रांस फैट की अधिकता होती है, जो लंबे समय में सेहत के लिए नुकसानदायक साबित होती है। अब यह अंतर आम उपभोक्ता भी समझने लगा है, और यही समझ आहार की पसंद को बदल रही है। वर्ष 2025 की कुलिनरी टूरिज्म मार्केट रिपोर्ट में हिमाचली और उत्तराखंडी मिलेट्स को 'हेल्थ बूस्टर' करार दिया गया है। रिपोर्ट के अनुसार, श्री अन्न से जुड़े वैश्विक बाजार का आकार 2024 में 98,100 मिलियन डॉलर आंका गया था, जिसके वर्ष 2032 तक 242 बिलियन डॉलर तक पहुंचने का अनुमान है। इस तेजी से बढ़ते बाजार में भारत, विशेषकर हिमालयी राज्य महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

पंजीकरण संख्या 14252/57 पंजीयक, समाचार पत्र, भारत सरकार
दिल्ली पोस्टल पंजीकृत संख्या DL(C)-12/1145/10-12
ISSN 0023-1088
मूल्य: ₹50

डा. अनुराधा अग्रवाल, परियोजना निदेशक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित तथा मैसर्स चन्दु प्रेस, 469, पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एस्टेट, दिल्ली-110092 से लेजरटाईपसैट एवं मुद्रित। संपादक: सुनीता अरोड़ा